मौर्यकाल में मूर्तिकला एंव वास्तुकला

प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एंव पुरातत्व विभाग

में

सनात्तकोत्तर परीक्षा हेतु प्रस्तुत

लघु शोध प्रबन्ध

निदेशक
डॉ0 राकेश शर्मा
अध्यक्ष
प्राचीन भारतीय संस्कृति एंव पुरातत्व विभाग
[illegible] का0 वि0 वि0 हरिद्वार

प्रस्तुतकर्ता
मनीष कुमार
एम0 ए0 द्वितीय वर्ष

पुरातत्व विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

मौर्यकाल में मूर्तिकला एंव वास्तुकला

प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एंव पुरातत्व विभाग

में

सनात्तकोत्तर परीक्षा हेतु प्रस्तुत

लघु शोध प्रबन्ध

निदेशक
डॉ0 राकेश शर्मा
अध्यक्ष
प्राचीन भारतीय संस्कृति एंव पुरातत्व विभाग
गु0 का0 वि0 वि0 हरिद्वार

प्रस्तुतकर्ता
मनीष कुमार
एम0 ए0 द्वितीय वर्ष

पुरातत्व विभाग
गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

Dr. Rakesh Sharma
Reader

Deptt. of Ancient Indian History
Culture & Archaeology
Faculty of Oriental Studies
Gurukul Kangri Univeristy
Haridwar -249404 (Uttaranchal)

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **मनीष कुमार** ने **''मौर्यकाल में मूर्तिकला एवं वास्तुकला''** नामक विषय पर अपना **लघु–शोध–प्रबन्ध** मेरे निर्देशन में पूर्ण किया है।

इनका यह शोध कार्य सर्वथा मौलिक प्रयास है तथा लघु शोध की उपाधि हेतु मूल्यांकन के लिए अग्रसारित है।

11/04/06

(डा0 राकेश शर्मा)

निर्देशक

विषय सूची

प्रस्तावना

कला की गणना मानव की सर्वोत्तम उपलब्धियों में की जा सकती है। मानव जब यायाबार जीवन व्यतित कर रहा था, तभी उच्च पुरापाषाणमाल में कतिपय चित्रों एंव कला कृतियों के रूप में इसके कला सेकेत अस्तित्व में आ गये थे। मानव समाज जब ताम्रकाल में पहुचता है तब हम प्राचीन जगत की नदी घाटी सभ्यताओं में कला को सुव्यवस्थित रूप में जन्म लेते हुए देखते है इसके बाद यह क्रम अविच्छिन रूप में चलता रहा।

प्राचीन भारतीय कला की थाती सांस्कृतिक इतिहास का अंगीभूत पक्ष है युगों युगों में भारतीय मानव के क्रियाकलापों का पर्यवेक्षण अतिविस्तृत एंव विविधतापूर्ण है। ललित कलाओं तथा उपकलाओं के बहुमुखी माध्यम के अर्न्तगत अनेक स्तरों पर मनुष्य ने अपने मननशील व्यक्तित्व का अनुभव हाथों के रचनात्मक सामर्थ्य के अनुरूप अभिव्यक्त किया हैं। कला कृतियों और स्मारकों का ब्यौरेवार ऐतिहासिक लेखा जौखा और सौन्दर्य शास्त्रीय मूल्यांकन स्वय में विशेष रोचक होने के साथ–2 उच्चस्तरीय अध्ययन की अपेक्षा करता है। भारतीय मनीषों के अनेकानेक अन्वेषकों से समय पर प्रेरणा रस ग्रहण कर भौतिक माध्यम के स्तर पर व्युत्पन्न कला के बहुआयामी कृतित्व में उन्हीं उपलब्धियों का प्रतिबिम्ब दृश्यमान हैं। जो इसे उत्तरोत्तर परिभाषित करती रहती है। वैचारिक उन्नयन के मूल तत्वों और मान्यताओं का साहित्य या कला में प्रस्फुटन एंव अन्विति मानव की वह सहज प्रवृत्ति और शक्ति है जो उसे प्रकृति की अन्यान्य सत्ताओं में अलग एंव स्वतन्त्र, साथ ही उनसे कहीं ऊपर ऊढ़कर उन्हें और स्वंय को देखने समझने की दृष्टि प्रदान करती है।

भारतीय शिल्य और स्थापत्य की सामग्री विशाल भौगोलिक क्षेत्र और कालविस्तार में बिखरी हुई प्राप्त होती है। देश और काल सम्बन्धी परम्पराओं एंव जातीय साधना में बहुविद स्वरूप एंव लक्ष्य स्वतः अपनी पहचान बनाते है। किन्तु उन सभी का मूलभुत अस्तित्व व्यापक 'भारतीय' से अनुप्राणित ज्ञात होता हैं। इस दृष्टि से कला का अध्ययन धर्म, सम्प्रदाय, लोक विश्वास, पूजा–विधि, जनजीवन के सामान्य व्यवहार और विशेष चलन, सामाजिक जीवन और आदर्श, अध्यात्मिक विचार और कर्मकाण्ड देवी देवता,

आर्थिक और भौतिक समृद्धि सौन्दर्य–परक दर्शन, प्रतीक–व्यंजना, अलंकरण, वैज्ञानिक और प्राधौकि के सिद्धांत और उनका विनियोग आदि विविध बातों का समकालिक परिप्रेक्ष्य में जानने समझने का इसी युग में साक्षात रूप में प्राप्त हुआ। ऐसा आधार प्रस्तुत करता है जिसकी प्रमाणिकता असंदिग्ध हैं।

प्राचीन भारतीय कला के उदाहरणों के संकलन अध्ययन ऐतिहासिक परिक्षण एंव विकास युगों में निर्धारण की विधा का इतिहास अधिक पुराना नहीं हैं। आधुनकि कला के पीछले लगभग दो सौ वर्षो के दौरान हुए किन्हीं जागरूक प्रयासों और गवेषणात्मक अनुसन्धानों का ही यह प्रतिफल है। कि अब तत्सम्बंधी विषय महत्वपूर्ण स्वरूप ग्रहण कर चुका है। सर्वत्र इसके प्रति जिज्ञासा आम चलन बन गयी हैं।

भारत में बड़े पैमाने पर तथा स्थाई सामग्री में चलने वाली जिस प्रथम संगठीन कला गतिविधि के बारे में हमें आज तक निश्चित जानकारी मिल पाई है। और जिसके समय निर्धारण करने योग्य उदाहरण हमें किसी भी मान्य संख्या में प्राप्त हो सके है। वह मौर्यकाल की है। सिन्धु धाटी की कास्ययुगीन सभ्यता से संख्या में कम मगर निरूपण में विविध आयाम के जो कला अवशेष हमें वसीयत में मिले हैं। उन्हें विश्वास पूर्वक किसी श्रेष्ठ कला के दौर का माना जा सकता है जिसके पीछे कला की लम्बी परम्परा और अनुभव रहें होंगे। वास्तव में हड़प्पा, मोहनजोदड़ो और दुसरे समान स्थलो से प्राप्त मोहरों पर बनी नक्काशियों तथा गोलाई में बनी प्रस्तर आकृतियों द्वारा प्रस्तुत कला बहुत ही विकसित परिष्कृत और चेतन है तथा अत्यन्त स्पष्ट और सार्थक ढंग से ऐसे लोगों की संस्कृति विचाराधारा को जाहिर करती है। सभ्यता की ही तरह इसकी कला भी परम्परा के रचनात्मक शिखर पर पंहुच चुकी थी। लेकिन यह तथ्य भी सत्य है कि कालकुंभ के अनुसार असंबधित और अव्याख्यायित रह जाने के कारण सिंधु धाटी की कला आब भी काफी हद तक एक अज्ञात वस्तु बनी हुई हैं।

मौर्यकालीन संस्थाए बड़ी स्थायी और प्रभविष्णु थी। उनका सर्वोत्तम रूप मौर्यकला में पाया जाता है। इस युग में कला के दो रूप मिलते है। अनका भेद स्पष्ट है। एक राजतक्षाओं की निर्मित कला जैसी चन्द्रगुप्त सभा और अशोक के स्तम्भों में पायी जाती है और दूसरी लोक कला की वह शैली है जो परखम यक्ष आदि की मूर्तियों में मिलती है। इन अवशेषों का देश व्यापी विन्यास ऐसे महत्व का है कि विश्व के इतिहास में इसकी

उपमा नहीं मिलती। लोककला की परम्परा पूर्व युगों से काष्ढ और मिट्टी में चली आई थी, पर अब उसे पाषाण के माध्यम से व्यक्त किया जाने लगा जैसा महाकाय यक्ष मूर्तियो में दखा जाने लगा।

शिल्प या पत्थर के अन्य सभी अवशेषों में कुछ लक्षण समान है, अवधारणा तथा योजना में वे सब विशाल है सब पर चमकदार पालिश की हुई है, सब सुव्यवस्थित है तथा रचना में पूर्ण और सुस्पष्ट है। इसके अलावा पाटलिपुत्र के भवनों तथा राजप्रसाद को एंव धौली के उस हाथी को छोड़कर जिसे जीवित चट्टान से तराशा गया था, अन्य सभी अवशेष कमोवेश बड़े आयामों के सख्त, धूसर पाषाणों से गढ़ गये थें, सभी बहुत ही बारीकी से तराशे गये थे तथा पालिश से इस तरह चमका दिये गये थे कि उस चमक की समानता भारत के इतिहास के किसी दुसरे काल में पाना कठिन हैं। वे सभी मौर्यों के राजसिंहासन की छाया में निर्मित हुए थे जिनमे अशोक अधिकांश से जुड़ा था।

हम यहां प्राचीन भारतीय इतिहास के एक ऐसे दौर के सामने खड़े है जिसमें साम्राज्य की विचारधारा, महत्वकांक्षा तथा दृष्टिकोण से प्रभावित होकर एक राजवंश, लकड़ी, बांस और संभवतः ईट, हाथीदांत, धातु तथा मिट्टी का परित्याग कर देता हैं। तथा विशाल शिल्प के लिए सर्वश्रेष्ठ सामाग्री के रूप में पत्थर का उपयोग एंव चट्टानों में नक्काशी करना शुरू कर देता है। और यह नई सामग्री इतनी पूर्ण सहजता तथा अधिकार के साथ इस्तेमाल की गयी है। कि लगता है कि पत्थर तराशने की कला लम्बें अरसे से प्रयोग में थी। जीवित चट्टान से निर्मित कलाकृतियों को छोड़कर बाकी सभी स्थानांतरयोग्य कलाकृतियों चुनार से निकाले गये मटमैले बालुकाश्म पत्थर से बनाई गयी है। निश्चय ही राज्य द्वारा कलाकारों को प्रचुर संसाधन उपलब्ध कराने से इतने व्यापक और विशाल पैमाने पर यह अवधारणा, योजना और कार्यान्वयन संभव हुए होगे।

प्रस्तुत ग्रंथ में मौर्यकाल से सम्बंधित वास्तुकला और मूर्तिकला का विशद विवेचन किया गया हैं। यह ग्रंथ पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय में मौर्यकालीन ऐतिहासिक उपलब्धियों का विवेचन किया गया हैं। बताया गया है कि किस प्रकार मौर्यकालीन महान शासकों के संरक्षण में सामाजिक शान्ति और आर्थिक उन्नति का वातावरण बना जिसके कारण मौर्यकला के विकास का स्वर्णिम अवसर मिला।

द्वितीय अध्याय में मौर्यकालीन मूर्तिकला का वर्णन किया गया हैं। जिसमें मुख्यतः यक्ष–यक्षणी की मूर्तियों का उल्लेख हैं। तृतीय अध्याय में मौर्यकला की वास्तुकला का वर्णन किया गया है। जिसमें मुख्यतः राजप्रासाद, स्तम्भ, स्तूप, गुफा एंव विहार, शिलालेख, चैव्यनिर्माणकला तथा नगरनियोजन का उल्लेख यिका गया है। चतुर्थ अध्याय में मौर्यकला पर विदेशी प्रभाव का विवेचन किया गया है।

प्रस्तुत ग्रंथ को लिखने में मुझे अधिक सहयोग और प्रेरणा श्रद्धेय गुरूवर डॉ0 राकेश शर्मा जी से मिली। समय समय पर उनके उचित मार्गदर्शन से मै। अपने ग्रंथ को पूरा कर सका। अतः मैं ह्रदय से उनका आभार प्रकट करता हूँ।

विभाग के अन्य अध्यापको डा0 श्यामनारायण सिंह, डा0 देवेन्द्र गुप्ता, एंव डा0 प्रभात कुमार के प्रति भी आभार प्रकट करता हूँ।

विषय के प्रतिपादन में मैने जिन विद्वानों के मानक ग्रथों का अध्ययन किया हैं उनके प्रति भी अपना आभार प्रकट करता हूँ।

Manish Kumar

मनीष कुमार

एम0 ए0 द्वितीय वर्ष

मौर्यकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मौर्यकला से सम्बन्धित तथ्यों की व्याख्या करने के किसी भी प्रयास में मौर्यो से तत्काल पहले की शताब्दियों में हो रहे भारत में कला प्रयत्नों तथा गतिविधियों की स्थिति का जायजा लेना जरूरी है। अर्थात एक तरफ हरयंक, शैशुनाग और नंद राजवंशों से सम्बन्ध के बारे में तथा प्राचीन एशियाई दुनिया की संपूर्ण संस्कृति की संरचना में भारत की और विशेष रूप से उत्तर भारत की स्थिति का जायजा लेना जरूरी है। इसके साथ ही मौर्य दरबार में सक्रिय ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक शक्तियों पर विचार करना भी जरूरी होगा जो मौर्य कला के लिए सीधे जिम्मेवार मौर्य दरबार में कार्यरत थी।

हरयंक, शेशुनाग और नंद साम्राज्य के समय में सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में कबीलाई और देहाती ढ़ांचे तथा दृष्टिकोण को व्यापक करने का धीमा और दृढ़ प्रयत्न हो रहा था। हमे ऐतरेय ब्राह्मण में ही राजसुय तथा ऐंद्रमहायिषेक जैसे यज्ञों, सार्वभौम राजाओं सर्वोच्च सभा तथा सर्वव्यापी साम्राज्य की चर्चा सुनने को मिलती है।

वास्तव में ई0 पू0 पांचवी और चौथी शताब्दियों तक उत्तर भारत की सामान्य राजनीतिक स्थिति किसी भी विचारणीय हद तक एक सार्वभौम सम्राट के अधीन साम्राज्य जैसी न थी बल्कि एक राजा या कबीले के अधीन अलग छोटे और स्वतंत्र राज्यों तथा सरकारों जैसी थी। ई0 पू0 चौथी शताब्दी के तीसरे चरण के आसपास ही यह आदर्श महापदम नंद के व्यक्तित्व में आंशिक रूप से चरितार्थ हुआ। राजनीतिक रूप से भारत धीमी गति से मगर दृढ़ता से अपने कबीलाई ढ़ांचे और दृष्टिकोण से ऊपर उढ़ रहा था जिसका प्रभाव हर हाल में जनता के प्रभावशाली तबकों के सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण पर पड़ना ही था।

323 ई0 पू0 में चन्द्रगुप्त मौर्य के सिंहासन पर बैढ़ने के समय से राजनीतिक अवस्था का चित्र स्पष्ट होने लगता है। वह मगध साम्राज्य का स्वामी था और पाटलिपुत्र उसकी राजधानी थी। वह चक्रवर्ती सम्राट था और उसका साम्राज्य भारत के विशाल भू–भाग में फैला हुआ था। जिसका विस्तार वाहीक से वंग तक और हिमालय से मैसूर

तक था। चन्द्रगुप्त में राजनैतिक संगठन की विलक्षण प्रतिभा थी और उसने अपने मन्त्री विष्णुगुप्त (चाणक्य) की सहायता से एक बड़े साम्राज की नींव डाली जिससे देश की राष्ट्रीय संस्कृति पर महत्वपूर्ण प्रभाव हुआ। उसके बाद उसका पुत्र बिन्दुसार राज्याशासन पर बैठा (298–272 ई0 पू0) और उसके बाद चन्द्रगुप्त का पौत्र अशोक राजा हुआ (272–232 ई0 पू0)। एक शताब्दी की दीर्घ काल में देश में जो सुख शान्ति रही उसका परिणाम संस्कृति और कला के लिए सुखदाई हुआ। अब हम ऐसे सांस्कृतिक युग में प्रवेश करते है। जहाँ कला के रूप एवं विषय बहुमुखी और समृद्ध थे, जिनका प्रभाव आगे के युगो पर भी स्थायी हुआ।

मौर्यो के सन्दर्भ में उनकी कलात्मक गतिविधियों को समझने के लिए उनके विदेशीयों से सम्बन्धों को भी समझना आवश्यक हैं। मौर्यों के द्वारा पाटलिपुत्र में सत्ता स्थापित करने, आधुनिक अफगानिस्तान तक फैले हुए और इस तरह ईरानी सत्ता और संस्कृति के मर्म को लगभग स्पर्श करने वाले अखिल भारतीय स्तर का साम्राज्य चन्द्रगुप्त द्वारा गठित करने और समकालीन शक्तियों के साथ धनिष्ठ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने से फिलहान परिस्थिति ने नया मोड़ लिया। ईरानी साम्राज्य बहुत पहले ध्वस्त हो चुका था और अब भारत उसका अंग न रहा था। ई0 पू0 330 में सिंकदर महान ने एक समय के शक्तिशाली ईरानी साम्राज्य को चकनाचूर कर दिया। किंतु अपनी विजय को सुदृढ़ बनाने के प्रक्रिया में इस ग्रीक सम्राट ने ईरानी साम्राज्यवाद तथा ईरानी कला और संस्कृति का अभिभूत कर देने वाला प्रभाव महसूस किया। सिकंदर के भारत आने पर और तत्काल बाद मौर्यो के यूनानीयों से सम्बंध स्थापित होने पर यह प्रभाव अवश्य ही मौर्यो ने भी महसूस किया होगा।

मौर्य कला के सन्दर्भ में मौर्य शासकों की विचारधाराओं और मौर्य प्रशासन का भी कला पर अवश्य ही प्रभाव रहा होगा। चूंकि मौर्य कला मौर्य दरबार तथा मौर्य सम्राटों की व्यक्तिगत इच्छा का फल है, इसलिए इस बात पर ध्यान देना उचित होगा कि सामाजिक दृष्टिकोण के तथा जिस जनता पर वह शासन करता था उसके प्रति रूख के बारे में अशोक अपने दिलचस्प आदेशपत्रों में क्या कहता है।

जनता के कल्याण के बारे में अशोक की चिंता की ईमानदारी तथा उसकी पद्धतियों की क्षमता पर संदेह किये बगैर औचित्य के साथ यह सोचा जा सकता है कि

उसने कुल मिलाकर धर्म की कुछ सार्वभौम नैतिक अवधारणो पर जोर दिया था, जिन्हें वह आदेशों और अध्यादेशों के द्वारा और उसी शब्दों में धर्मानुसार तथा सातवें शिला आदेशपत्र के अनुसार अनुनय द्वारा अपनी जनता के मन में बैठाना चाहता था। इसमें कोई संदेह नहीं है कि उसकी कलाओं में जनता की कलाओं के प्रदर्शन के लिए कोई अवसर नहीं था। वास्तव में अपूर्व नैतिक अवधारणये खुद चाक्षुष प्रदर्शन के लिए विषय और विचार प्रदान नहीं कर सकती थी। इसलिए अशोक के अध्यादेशो ने कला के क्षेत्र में विशाल धर्मस्तम्भों की शक्ल ली और प्रशासन के क्षेत्र में धर्ममहामात्रों की नियुक्ति और धर्मानुशासन की धोषणा की शक्ल लीं।

मौर्यकालीन केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था तथा राजनीतिक एंव सांस्कृतिक परिस्थितियों ने अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन उत्पन्न किये। सामाजिक शान्ति और आर्थिक समपन्नता के वातावरण में मौर्यकालीन कला को निखरने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ।

मौर्यकालीन कला

मौर्यकालीन मूर्तिकलाः–

भारतीय कला का स्पष्ट एंव प्रमाणिक विवेचन मौर्ययुग से प्रारम्भ होता है। 323 ई0 पू0–321 ई0 पू में चन्द्रगुप्त मौर्य के सिंहासनारोहण से भारत की राजनीतिक एंव सांस्कृतिक परिस्थियों में अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। हिमगिरि से वेल्गोला तक सर्वप्रथम एकक्षत्र साम्राज्य की स्थापना हुई।[1] इस राजनीतिक ऐक्य ने सामाजिक शान्ति एंव आर्थिक सम्पन्नता का वातावरण उत्पन्न किया। जिससे सांस्कृतिक परम्पराओं के पल्लव एंव पुष्पीकरण को स्वर्णिम अवसर उपलब्ध हुआ। मौर्य शासको ने कला का प्रश्रय प्रदान कर उसके विकास संबल को कार्य किया। साथ ही जनसाधारण में प्रचलित कथा परम्परा ने भी इसी युग में स्थायीत्व ग्रहण किया। इसीलिए मौर्ययुगीन कला का दो वर्गो में विभाजित किया गया है।[2]

1. राजकीय कला
2. लोक कला

राजकीय कलाः–

राजकीय कला के अधीन पाटलिपुत्र का राजप्रसाद, स्तूप, बराबर एंव नागार्जुन की गुफांए, एकाश्मक वेदिकाएं तथा अशोक के बहुसंख्यक स्तम्भ प्रमुख है। कलात्मक दृष्टि से अशोक के स्तम्भ सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। जिनकी मूर्तिकला एंव वास्तुकला को पृथक करना असंभव है।

अशोक के स्तम्भ पशु शीर्षक से युक्त हैं। ये पशु आकृतियां मूर्तिकला के अनुपम उदाहरण हैं। अशोक के बखिरा सिंह स्तम्भ, संकिसा गंज शीर्षक, रामपुरवा वृषभ शीर्षक, लोरियानन्दन गढ़ सिंह शीर्षक, धौली की हस्ति, सांची सिंह शीर्षक, तथा सारनाथ सिंह शीर्षक मूर्तिकला की विकास की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें विभिन्न पशुओं की शारीरिक एंव उसके संतुलन से ज्ञात होता है। कि मूर्तिकला का जो रूप बखिरा सिंह से प्रारम्भ हुआ उसकी परिणिति सांची एंव सारनाथ के सिंहो में प्राप्त होती है।

---

1. डा० रूदल प्रसाद यादव, प्राचीन भारतीय कला का संक्षिप्त विवेचन, पृ० 17
2. वही, पृ० 17

बखिरा सिंह स्तम्भ के शीर्ष पर जो सिंह बैठा है वह सुव्यवस्थित नहीं हैं। सिंह किंचित दुबका हुआ असामान्य रूप में बैठा है। उसके नीचे की चौकी पर लगता है उसे बलात बैठाया गया हो। इसी प्रकार संकिसा का गज भी दबा हुआ है। उसके शरीर में कोई संतुलन नहीं है। पैर भी ठीक से स्थिर नहीं है। उड़ीसा के धौली नामक स्थान पर एक चट्टान को काटकर जो हस्तिमूर्ति बनाई गई है वह अपनी विशालता और ओजस्विता के लिए विख्यात है। कालसी के मैदान में हस्तिमूर्ति उत्कीर्ण है। उसके पेट के बीज गजतम लेख है जो इस तथ्य का सूचक है कि यह गजराज की मूर्ति हैं।[1]

इस मूर्ति में सूंड को इतने स्वाभाविक ढ़ंग से गोदा गया है जैसे हस्ति कोई वस्तु सूंड में लपेटकर अदा रहा हो। आगे के पैर कुछ तने है पूंछ भी कुछ खिंची है। जैस हस्ति धावक मुद्रा में हो। रामपुरवा के वृषम के युग तक तो मूर्ति कलाकार पशुओं के अंकन में पूर्ण सिद्धहस्त हो गया था। वृषम एक सोड के रूप में चित्रित है जिसकी बलिष्ठ मांसपेशिया, उन्नत गर्दन, लहराती लरियां अत्यन्त ही नैसर्गिक बनी हैं। इसके स्कन्ध के लहराते केश आगे के तने पैर, क्षीण कटि एंव पीन वक्ष, सिंह के स्वभाविक गुण उसके विधमान है। रामपुरवा के सिंह में तो कोई भी कृत्रिमता दृष्टिगत हीं नहीं होती।

इसके पश्चात कलाकार ने पशु मूर्तियों के संपुजन की परम्परा प्रारम्भ की जिससे मूर्तिकला में विविधता उत्पन्न हुई। सांची एंव सारनाथ के स्तम्भों पर उसने एक ही साथ चार–चार सिंहो का निर्माण किया तथा उसके नीचे एक वृत्ताकार पट्टी में भी चार भिन्न पशुओं को भिन्न मुद्राओं में उत्कीर्ण किया। इनमें चार सिंह, पीठ सटाए बैठे है। सिंहो का निमार्ण भोजपूर्ण शैली में हुआ है। उनके ऊपर चक्र इस प्रकार स्थित है जैसे शाक्य सिंह सम्पूर्ण विश्व पर विजय कर रहा हो।

में नीचे की चौकी में वृषभ, अश्व, सिंह एंव गज उत्कीर्ण हैं। अश्व एंव वृषभ तो कुलाचे भर रहे है जैसे प्रसन्नता से वे नृत्य कर रहे हो। ऐसा प्रतीत होता है कि मौर्य कलाकारों में पशुओं के अंकन की कोई प्रतियोगिता थी। सभी पशुओं में स्वाभाविकता आरोपित करने का प्रयास किया गया है जिसकी सफलता उसे सारनाथ के सिंह शीर्षक में प्राप्त हुई। सिंह के शारीरिक सौष्ठव, उनकी नसो में खिंचाव, मांस पेशियों में उभार था गर्दन पर लहराते केश मौर्य कलाकार की उत्कृष्ठ कलात्मक प्रतिभा एंव सौम्यपूर्ण

---

1. डॉ0 रुदल प्रसाद यादव, प्राचीन भारतीय मूर्तिकला का संक्षिप्त विवेचन, पृ0 17

कलात्मक शक्ति के परिचायक है। रामकृष्ण दास ने ठीक ही कहा है कि सारनाथ के सिंहो में कोई कलात्मक शेष ढूंढना असम्भव है। स्मिथ जैसे कलापरखी इसे विश्व की अनुपम कृति मानते है। जिसमें आदर्श ओज स्वभाविक रूप से चित्रित है।

It would be difficult fo find in any country an example of ancient animal sculputire suprior or taken equal to this beautiful work of art, which succefully conbines realistic modelling with idealistic dignity and is finished in every detail with perfect accuracy

मार्शल जो मौर्यकला के आलोचक है, जिन्होंने इसे ईरानी या यूनानी प्रमाणित करने का प्रयास किया है। वे भी सारनाथ के सिंह शीर्षक के आकर्षण से वंचित न रह सके। उन्होनें इस तृतीय शताब्दी ई0 पू0 की एक अदभुत कृति माना है जिसमे ओजस्विता एंव स्वभाविकता का अनूठा संगम है।[1]

The Sarnath capital on the after hand though by means a master pices, is the procuct of the most developed art of which the world was cognisant in the third country s.c. so for as naturalism was his aim, the sculptor has modelled his figure, direct from nature.

डा0 अग्रवाल के अनुसार अशोक का प्रखर विष्णु रूप एंव प्रजा का मृदुल रूप सारनाथ की पुश मूर्तियों में एक दूसरे के पूरक है।[2]

डा0 कुमार स्वामी ने अशोक युगीन कला को तराशने की विधि और चमक को तकनीकी दृष्टि से अद्वितीय माना है जिससे मूर्तियों में स्वभाविक गति उत्पन्न होती है।

Cutting and polishing of the surface are with extra ordanary precian and accuriacy, not only is great teachinal skill displayed in their respect,but the art itself is of an advanced and taken tate type with quicks realistic modelling and makements.

1. डा. रुदल प्रसाद यादव, प्राचीन भारतीय कला का संक्षिप्त विवेचन, पृ. 17
2. डॉ. निहार रंजन राय, दि एज आफ नन्दा एण्ड मौर्या, पृ. 95

बेन्जामिन रोलां ने वो सारनाथ स्वस्थ शीर्षक को जादू मन्त्र की भांति आकर्षक माना है।

In considecing this monuments, as indeed every religious memorial in Indian art history use must keep in mind that its primary function was magical and auspicious neither 'decoratice' nor 'architeetund'.

डा0 निहार रेज़न राव ने ठीक ही कहा है कि ''प्रतिरूपण की प्रभावशीलता में मोस की कोमलता और भीतर बह रही जीवनधारा का पूरा बोध इन पशु मूर्तियों से झलकता है।

इस प्रकार अशोक ने अपनी कला कृतियों से धम्म प्रचार द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृति की परिधि में भारत के चित्र को ऊजागर किया।

लोक मूर्तिकलाः—

सैन्धव युग से ही मूर्तिकला जन साधारण में लोकप्रिय रही है। हड़प्पा की मृण्यमूर्तियां लोक मूर्तिकला के रूप में ही प्रचलित थी। हड़प्पा युग के पश्चात एंव मौर्य युग के पूर्व की मूर्तिकला मात्र साहित्य में सुरक्षित है किन्तु यह बड़ा ही स्वभाविक प्रतीत होता है कि हड़प्पा की कला पूर्णतया विलुप्त नहीं थी। लोक कला के रूप में यह सम्पूर्ण जन समुदाय में व्याप्त थी। जो मौर्य युग में पाषाण उपादान के माध्यम से स्थिरता को प्राप्त हुई मौर्यकाल से अनेक स्थूलकाय स्त्री पुरूष मूर्तियां प्राप्त हुई है। जिनकी समता के सम्बन्ध में प्रारम्भ में अनेक भ्रान्तियां प्रचलित थी। परखम से एक विशाल पाषाण मूर्ति प्राप्त होती है। पटना की मूर्तियों को उन्होनें उदायिन नन्द तथा वर्त नान्दिन की मूर्ति कहा था। डा0 आर0 पी0 चन्दा ने सर्वप्रथम उस भ्रम का निवारण किया। मथुरा की एक स्थूलकाय स्त्री ''मनसा देवी'' के नाम से पूज़ित है। ''यरवी'' तथा ''यछनी'' लेख से युक्त है।

परखम यक्ष के लेख के आधार पर उसकी पहचान 'मणिभद्र' यक्ष से की गई है। पटना की मूर्तियों के लेख के अनुसार सर्वा नन्दीएंव अक्षमनीविक पक्षों की कल्पना की गई हैं। इन लेखो तथा लोकोक्तियों के आधार पर प्रो0 चन्दा का मत आज सर्वग्राहय है। कि ये मूर्तियां शेशुनागनन्द शासकों की नहीं वरनृ गाँव गाँव में लोक देवी देवताओं

के रूप में पूज्य यक्षों ऐव यक्षणी से सम्बन्ध है। उनमें अधिकांश मूर्तियाँ मौर्यकालीन है जिन्हें मौर्य कला की निधि कहा गया है। वे मूर्तियां मथुरा से उड़ीसा, वाराणसी से विदिशा तथा पाटलिपुत्र से शूपरिक तक लगभग सम्पूर्ण मध्य उत्तर भारत से प्राप्त हैं। इनमें निम्नलिखित मूर्तियां विशेष उल्लेखनीय है।[1]

1. मथुरा के परखम ग्राम से मणिभद्र यक्ष, बरोदा ग्राम से एक यक्ष, झींग का नागरा से एक यक्षिणी।
2. भरतपुर में नोह ग्राम से प्राप्त एक यक्ष।
3. बेसनगर से प्राप्त यक्षी जो सम्प्रति कलकत्ता संग्राहलय में सुरक्षित है तथा तेलिन यक्षी।
4. ग्वालियर संग्रहालय में सुरक्षित समीपवर्ती ग्राम से उपलब्ध यक्ष।
5. पटना में दीदारगंज की चामरग्राही यक्ष, तथा दो यक्ष मूर्तियां।
6. वारणसी का त्रिमुख यक्ष।
7. उड़ीसा में शिशुपाल गढ़ का यक्ष।

इन विभिन्न यक्ष मूर्तियों के काल के सम्बन्ध में भी अनेक विचार धाराएं प्राप्त होती है। पटना के दोनो यक्ष मूर्तियों के रूप, आकार, अवधारणा, निरूपण, वेशभूषा एंव आभूषण में समानता है। इनके कन्धों पर पड़े दुपट्टे पर ब्राह्मी लिपि की पक्ति उत्कीर्ण है जो लिपिगत विशेषताओं के आधार पर ईस्वी सन के लगभग की प्रतीत होती है। किन्तु मौर्य पालिश के आधार पर इसे मौर्य युगीन ही कहा गया है। डा0 निहार रंजन राय ने मूर्तियों के भारीपन, ढोसपन, आयतन, एक और हस्त, यक्ष एंव उदर का गोलापन, पीठ में तनाव से मथुरा के बोधिसत्व मूर्तियों के समीप माना है। इसके शरीर से चिपक पारदर्शी वस्त्र कुषाण कला की विशेषताओं से ओतप्रोत है।

पटना के समीप लोहनी पुर से नग्न जैन प्रतिभाओं के धड़ प्राप्त हुए हैं जो इस समय पटना संग्रहालय में सुरक्षित हैं। इसमें बड़े धड़ को जायसवाल ने मौर्य कालीन तथा छोटे धड़ को शुंगकालीन स्वीकार किया है। किन्तु डॉ0 राय दोनों को समकालीन सवीकार करते हुए परखम यक्ष के निकटवर्ती मानते हैं। परखम यक्ष पर भी मौर्ययुगीन पालिश है। ये यक्ष एवं यक्षिणियां भौतिक सम्पदा एवं शारीरिक स्वास्थ्य को देवता माने

1. डॉ॰ रुदल प्रसाद यादव, प्राचीन भारतीय मूर्तिकला का संक्षिप्त विवेचन, पृ॰ 23

जाते थे। परखय यक्ष के थोड़े झुके घुटने तथा अपेक्षाकृत पतले पैर ग्वालियर के निकट मणिभद्र यक्ष के समान है। शरीर को स्थूलकाय बनााकर शक्ति का प्रदर्शन किया गया है। तथा आभुषण तथा वस्त्रों से वैभव का परिचय दिया गया है। यदि इनमें मौर्य साम्राज्य की अतुल शक्ति एवं विपुल वैभव का प्रत्यारोपण किया जाए तो कोई अत्युक्ति न होगी।

दीदारगंज की यख यक्षिणी मूर्तियाँ :–

मूर्तिकला की दृष्टि से दीदारगंज की यक्ष यक्षिण मूर्तियाँ मौर्य लोक कला का श्रेष्ठतम उदाहरण हैं। डॉ0 अग्रवाल दीदारगंज की मूर्तियों के विषय में लिखते हैं कि दीदारगंज की मूर्तियां जहाँ भव्य है, वहीं शिल्पी ने इनके आकार प्रकार इनके रुप व सुडौलता पर ऐसे ध्यान रखा है कि कही भी आकार प्रकार एवं नाप की समरुपता बिगड़ नही पाई।" मस्तिष्क, मुख, वक्षस्थल, भुजाएं, उदर, जंघाएं, नितम्भ आदि सब की बनावट अनुपम है। यह यक्षिणी मूर्ति पटना के दीदारगंज के पास से प्राप्त हुई थी। यह पांच फुट छः इंच ऊंची है। यह देखने में अत्यन्त कोमल, रमणीय नारी मूर्ति है।

बी0ए0 स्मिथ लिखते है कि उस नारी मूर्ति से लावण्यता टपकता है। शिल्पी ने कठोर पाषाण में रेखाओं को ठकेर कर मानव नारी को अपना रुप देखने के लिए प्रतिबिम्ब के सामने खड़ा कर दिया है। कुमार स्वामी लिखते है कि मूर्ति का मुखमण्डल गोलाकार, चिकना एवं शरीर का प्रत्येक अंग गठा है। पेट की सरवटों का उभार अति स्वाभाविक है। मूर्ति के दाहिने हाथ में चमर केश राशि गुथी हुई है। हाथ की कलाई में चूड़ियाँ तथा कंगन गले में एक आंवलीए एक लड़ी पड़ी है। तथा दो लड़ियों से युक्त मुक्ताहार भी पुष्ट गोल स्तनों के मध्य विराजमान है। कमर में पाँच लड़ियों वाली करध ानी तथा पैरों में मोराभूषण है व कमर के पीछे शारीरिक सुडोलता को न दिखाते हुए सपाटपन नितम्भों के अतिरिक्त मिलता है। अधोभग के वस्त्रों की चुनट दिखाने के लिए लहरियादार गहरी रेखाएं बना दी गयी हैं। शरीर के ऊपरी भाग को ढकता हुआ एक पारदर्शक वस्त्र बाएं कंधे से ऊपर से दाहिनी भुजा के नीचे पैर तक फैला हुआ है। पेंकट का पर पड़ी इस नारी मूर्ति पर ओप दार (चमकदार) पालिश है। इस मूर्ति में पुष्टवक्ष और

विस्तृत नितम्ब काया नारी के सौन्दर्य को झलकाते हैं।

कुमार स्वामी के अनुसार दीदारगंज की इस यक्षिणी मूर्ति में भारतीय नारी सौन्दर्य मूर्ति मानकर करने का शिल्पकार का प्रयास पूर्णतया सफल रहा है।[1]

यक्ष यक्षिणियों के अतिरिक्त मौर्य युगीन अनेक अलंकरणार्थ मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। मौर्य राजदरबार से कोई संबन्ध ज्ञात नहीं होता। सारनाथा से अनेक सिरों वा सिरों के टुकड़े चुनार के बलुए पत्थर से प्राप्त हुए हैं। जिन पर मौर्य पालिश है। एक मेहराब पर एक शोकमगन युवती तराशी गई है, जो सुकोमलता का प्रतीक है। इसकी पीठ छन्नत इरोजए स्पष्टतः दृश्य है। मुंह दोनों घुटनो के बीच छिपा हुआ है। नारी के वियोगावस्था का ऐसा अदभुत चित्रण अन्यत्र उपलब्ध नही होता। पाटलिपुत्र से तक्षशिला तक उत्खनन से अनेक मूर्तियां प्राप्त हुई हैं जो शैली एवं वस्त्राभूषण से मौर्य युगीन प्रतीत होती हैं। स्टेला कैम्रिश ने कौशाम्बी के समीप अनेक प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण का उल्लेख किया है। जो मौर्य स्तम्भों के पदमपुष्प के समान है। इस प्रकार मौर्य लोहकभाज यक्ष यक्ष्णी तक ही सीमित नहीं हैं वरन प्रकृति के विभिन्न दृश्यों को भी कलाकारों ने अपनी कला में पूर्ण ध्यान दिया है। प्रधानता यक्ष एवं यक्षणी की है।

मौर्य कालीन वास्तुकला

मौर्य सम्राटों ने भारत को सुख शान्ति एवं समृद्धि से पूर्ण कर उसके सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास की ओर मुख्य रुप से योगदान किया। कौटिल्य के अर्थशास्त्र, मेगसथनीज के विवरण, अशोक के स्मारकों के लेख एवं अभिलेख, बौद्ध – जैन धर्म के ग्रन्थ, मौर्यकालीन संस्कृति को प्रामाणिक रुप से प्रस्तुत करते हैं।

भारतीय कला का स्पष्ट एवं प्रामाणिक विवेचन मौर्ययुग से प्रारम्भ होता है। 323 ई0 पू0– 321 ई0पू0 में चन्द्रगुप्त मौर्य के सिंहासनारोहण से भारत की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों में अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। हिमगिरी से श्रवणवेलगोला तक सर्वप्रथम एकछत्र साम्राज्य की स्थापना हुई।[1] मौर्य काल शान्ति व्यवस्था, सुख समृद्धि तथा राजकीय सम्पन्नता, वैभव और संरक्षण होने से कला के विकास को खूब

1. कुमार स्वामी, हिस्ट्री आफ इण्डियन एण्ड इन्डोनेशियन आर्ट, पृ० 50

प्रोत्साहन मिला। चन्द्रगुप्त के काल तक वास्तुकृतियों में काष्ठ का प्रयोग होता था, परन्तु अशोक के समय से प्रस्तर का प्रयोग आरम्भ हुआ स्टैला क्रैमरिश ने प्रशंसा करते हुए लिखा है कि :

"भारतीय इतिहास में कलाा के क्षेत्र में पहली बार मौर्यकला में ही सुसंगठित क्रियाकलाप के दर्शन होते हैं और प्राचीन कला वास्तुओं में जिनकी तिथि कुछ विश्वास से बतलाना संभव है, वे मौर्यकाल से ही मिलनी प्रारम्भ होती है।"

मौर्य कालीन स्थापत्य कला उच्चकोटि की और अभूतपूर्व रही। मौर्य सम्राटों ने विशेषकर अशोक के भव्य भवनों और कलापूर्ण स्मारकों का निर्माण कर कला को एक नई दिशा दी, जिसके अवशेषों को आज भी कला के सर्वोतकृष्ट नमूनों में जाना जाता है। अशोक से पहले भवन, राजप्रसाद और कलाकृतियों में ईंट और लकड़ी का प्रयोग किया जाता था। परन्तु अशोक के राज्यकाल में पाषाण का प्रयोग अत्यधिक कुशलता एवं बहुलता से किया गया।

मौर्य कालीन वास्तुकला का विवरण निम्न प्रकार है :–

1. नगर नियोजन,
2. राजप्रसाद
3. स्तम्भ
4. स्तूप
5. गुहा
6. चैत्य
7. शिला लेख

1. नगर नियोजन

मौर्य शासकों ने नगर–नियोजन पर विशेष ध्यान दिया। यदि एक ओर काश्मीर में श्रीनगर की स्थापना की तो वहीं दूसरी ओर नेपाल में ललितपाटन नामक नगर बसाया। इन नगरों को भवनों से सुसज्जित किया गया। नगर के चतुर्दिक ऊंची–ऊंची दीवारें सुरक्षा हेतु बनायी गई और बाहय भाग की ओर परिधा का निर्माण हुआ था। राजधानी

पाटलिपुत्र का वास्तु विन्यास मौर्य सम्राटों ने प्रथम योजना प्रारम्भ की। अर्थशास्त्र में दुर्ग विधान[1] के अन्तर्गत इन वास्तु लक्षणों का परिचय दिया गया है। नगर के चारों ओर गहरी परिधा, ऊंचा प्राकार जो ऊंचे धूलकोट पर बना हो, प्राकार में यथास्थान द्वारों का विधान, कोष्ठ और अट्टालकों का विधान होना चाहिए। परकोटे के भीतरी ओर एक ऊंची चौड़ी सड़क बनाई जाती थी जिसे देवपथ कहा है। प्राकार क ऊपर कपिशीर्षक या कंगूरों कर पंक्ति बनाई जाती थी। नगर को महापथ, रथ्या और वीथियों द्वारा अलग अलग भागों में विभक्त किया जाता था। उसके मध्य में राज प्रसाद का स्थान होता था जिसके चारों ओर विशाल उद्यान बनाया जाता था उसी के पड़ोस में ओर भी अनेक प्रकार के भवन बनाए जाते थे। दुर्गविधान का भी अपनी राजधानी को बनाते समय उसी विन्यास का आश्रय लिया था। यवन राज सिल्यूकस की ओर से चन्द्रगुप्त मौर्य की सभा में भेजा गया दूत मेगस्थनीज था उसने पाटलिपुत्र के वैभव का आंखों देखा हाल लिखा है। उसके अनुसार नगर के परकोटे का घेरा 9 मील था और उसकी चौड़ाई ड़ेढ मील थी। उसकी खाई 600 फुट चौड़ी और 44 फुट गहरी थी उसके परकोटे में 63 द्वार थे और 570 अट्टालक या बुर्ज थे।

कुम्हराहर में मौर्य प्रासाद के अवशेष और उसके उत्तर में बुलन्दी बाग में नगर के परकोटे या शाला प्राकार के अवशेष 450 फुट लम्बाई तक पाए गए है। जिसमें प्राकार को राजप्रसाद से काफी दूर बनाना चाहिए ओर नगर की सीमा पर गंगा से हटकर होना चाहिए। नगर–प्राकार के जो अवशेष मिले हैं उनमें दोनों ओर साखू के खड़े दांव लठ्ठों की दीवारें हैं। बिहार में पटना बांकीपुर रेलवे स्टेशन, कुम्हराहार ग्राम के उत्तर में कल्लू और चमन नामक तालाबों में और इनके आस पास की बस्तियों में पाटलिपुत्र के अवशेष आज भी उपलब्ध होते हैं। पाटलिपुत्र की लकड़ी की दीवार के तथा मौर्य महलों के अवशेष कुम्हराहार बांव के समीप प्राप्त हुए हैं।

---

1. अर्थशास्त्र, 2/21

2. राज प्रसाद :

मौर्यों के राजप्रसाद ओर भवन अत्यन्त ही भव्य, विशाल ओर सुन्दर होते थे। वासुदेव शरण अग्रवाल, मौर्यों के भवनों के विषय में लिखते हैं कि मौर्य कालीन भवन के अवशेष यह प्रमाणित करते हैं कि उस समय का निर्माण अपने चरमोत्कर्ष पर था।

मौर्यों की राजधानी पाटलिपुत्र जिसमें कि पुरातन परम्परा का पुनरूथान मिलता है। सत्यकेतु विद्यालंकार लिखते हैं कि मौर्यकालीन कला के प्रेरणा स्त्रोत सिन्धु सभ्यता की सांस्कृतिक विरासत रही हैं।

कुम्हराहार से उपलब्ध अवशेषों के आधार पर राज प्रसाद की विवेचना व्यक्त की जाती है। पाटलिपुत्र के राज प्रसाद का निर्माण चन्द्रगुप्त द्वारा हुआ। इसकी परिपुष्टि मेगास्थनीज के कथनों एंव स्तम्भ की पेंदी पर अंकित ''चन्द्राकिंत मेरु '' से होती हैं। मौर्यों की राजधानी पाटलिपुत्र में सुन्दर उद्यान के बीचों बीच प्रथम मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त का विशाल राज प्रासाद स्थित था। इसका सभा भवन ऊंचे स्तम्भों पर आधारित था और उन पर अत्यन्त सुन्दर मूर्तियां अंकित थी तथा चित्रकला का आकर्षक प्रदर्शन था। मेगस्थनीज ने इस राज प्रासाद की खूब प्रशंसा की है। उसके मतानुसार यह प्रासाद ईसा की राजधानी सूसा के राजप्रासाद से भी अधिक सुसज्जित, सुन्दर और भव्य था। समकालीन यूनानी लेखकों ने पाटलिपुत्र में भव्य राजमहलों के हवाले दिए हैं और वे उन्हें विश्व में सबसे अधिक सुन्दर तथा शानदार मानते हैं।

यह राजप्रासाद तीन भागों में विभक्त था। प्रथम भाग में गणशाला एंव सिपाहियों के लिए कोठे का निर्माण हुआ था। द्वितीय भाग में सभा मण्डप और तृतीय भाग में प्रासाद का अन्तः पुर भाग था। सभा भवन स्तम्भों पर टिका हुआ था। स्तम्भ पूरब से पश्चिम की ओर पंक्तियों में निर्मित थे। प्रत्येक पंक्ति में दस स्तम्भ तथा कुल आठ पंक्तियों हैं। प्रत्येक दो स्तम्भ के बीच पन्द्रह फीट की दूरी हैं। स्तम्भ की ऊंचाई लगभग इक्कीस फुट एंव दो इंच हैं। मैगस्थनीज ने इसकी महत्ता बताते हुए लिखा हैः ''राजप्रासाद सुनहले स्तम्भों से अलंकृत हैं। उन स्तम्भों को परस्पर मिलाने वाली एक सुनहली धनी बेल है। इस बेल पर चांदी के भांति भांति के विहग नाना मुद्राओं में बैठाए गए हैं।

स्पूनर महोदय ने राजप्रासाद के उत्तर एंव दक्षिण की तरफ दो तालाबों का उल्लेख किया हैं। उनके अनुसार से कालू और चमन नाम तालाब थे।

चन्द्रगुप्त की सभा जैसा वर्णन महाभारत के सभापूर्व[1] में प्राप्त होता है। सभापूर्व में यूद्धिष्ठिर की सभा, इन्द्र सभा, यम सभा, वरूण सभा, कुबेर सभा एंव ब्रह्म सभा का विवेचन हैं डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल का विचार है कि महाभारत के सभापर्व का विवरण काफी हद तक चन्द्रगुप्त की सभा से मेल खाता है। सभापर्व में दक्षिण की तरफ सात काष्ठमंच उपलब्ध हुए हैं। जिनकी लम्बाई, चौड़ाई एंव ऊचाई क्रमशः तीस फुट, पांच फुट चार इन्च एवं साढ़े चार फुट है। डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल ने इसका मूल्यांकन करते हूए लिखा है : "प्रत्येक मंच की रचना इतनी सूक्ष्मता और सूनिश्चित सामंजस्य के साथ की गई है कि आज भी काष्ठ शिल्प में वैसा कम ही संभव है।" ईलियन ने वयक्त किया है कि सूसा और बूटाना के राज प्रासाद किसी भी तरह पाटलिपुत्र के राजप्रासाद के तुल्य नहीं हैं। फाहियान कहता है कि यह राज प्रासाद आश्चर्य में डाल देता है। इसकी रचना देवताओं द्वारा की गई जान पड़ती है।

इस प्रासाद का निर्माण चन्द्रगुप्त के द्वारा हुआ या अशोक ने कराया–यह प्रश्न मौर्य कला के इतिहास के लिए महत्वपूर्ण है। साहित्यिक साक्षी से सिद्ध है कि इसका श्रेय चन्द्रगुप्त को ही है। सर्व प्रथम एक विशाल साम्राज्य के लिए राजधानी, राज प्रसाद और केन्द्रीय सचिवालय की आवश्यकता थी। दूसरे यवन दूत मेंगस्थनीज के साक्ष्य से ज्ञात होता है कि राजधानी एवं राजप्रासाद अशोक से पहले अस्तित्व में आ चुके थे और मेंगस्थलीज ने उन्हें देखा था और उनका आंखों देखा वर्णन किया है। तीसरे सभा मण्डप में स्तम्भों की पेंदी पर कई चिन्ह ऐसे खुदे हैं, जैसे "चन्द्रांकित मेरु" जो चन्द्रगुप्त के मौर्य शासन से संबन्धित माने जाते हैं। इन्हीं में नन्दी पद, वेजयन्ती और तीन वृतों की तीन पंक्तियां हैं। चन्द्रांकित मेरु का संबन्ध चन्द्रगुप्त से संभव है क्योंकि वह मौर्यकालीन आहत मुद्राओं पर प्राप्त होता है, जिनका प्रचलन चन्द्रगुप्त के समय था। इससे सूचित होता है कि भास्वर प्रभा या चमकीली ओप और उच्छित स्तम्भ दोनों की कल्पना चन्द्रगुप्त के समय में की गई। अशोक ने स्वंय अपने से पहले की स्तम्भ पंक्तियों का उल्लेख किया हैं। पंतजलि ने चन्द्रगुप्त के राज्य का से 125 वर्ष पीछले लिखते हुए

1. महाभारत, सभा पर्व, 6/11

''चन्द्रगुप्त'' सभा का उल्लेख किया हैं। वह एक प्रकार का शाला मण्डप था। इसी नाम से यह सभा बाद के युगो में प्रसिद्ध हुई है।

रौलेंड लिखते हैं। कि वास्तविक राज प्रसाद से भी कहीं अधिक महत्व के अवशेष उस दरबार हाल के हैं जिसमे आगे एक प्लेटफार्म बना था। यह ठोस लकड़ी का बना था और मेसोपोटामिया और ईरान के राजप्रसादों के प्लेटफार्म की तरह का था। निश्चय ही इसका प्रयोजन किसी बैठक अथवा प्रासाद के सामने लगे सोपान मार्ग की नींव से था। इस प्रकार के प्रासाद लग्न दरबार हाल को ईरान में ''आपादान'' कहते थे। इसके निर्माण में पत्थर के स्तम्भों का उपयोग हुआ था जिसकी कतारे एक के बाद एक चली गई थी। जिनकी संख्या 80 थी। ओर जिन पर लकड़ी छत टिकी थी। नदियों की बाढ़ से नष्ट इन स्तम्भों अथवा इमारत के बचे अवशेषों से स्पष्ट जान पड़ता है। कि भारत की निर्माण व्यवस्था पर्सिपोलिस के हखामानी सम्राटों के महलों के आधार पर की गई थी। जिस प्रसाद को सिकन्दर ने नष्ट कर दिया था। उसकी हखामानी कला के मौर्यकला पर प्रभूत प्रभाव का यह मात्र पहला प्रमाण हैं।[1]

3. स्तूपः

स्तूप कला का मूल वैदिक युग में है, परन्तु मौर्यकालीन अशोक के समय इसका विकास हुआ। बौध अनुश्रुति और साहित्य के अनुसार अशोक ने 80,000 स्तूपों का निर्माण कराया था। स्तूप का अभ्रिपायः श्रृग्वेद[2] में इसका प्राचीनतम उल्लेख हैं। अग्नि की उढ़ती हुई ज्वालाओं को स्तूप की संज्ञा दी गयी हैं। इसी ग्रन्थ[3] में आगे विवेचित है कि सूर्य हिरण्य स्तूप है और उसकी किरणों का बिखराव स्तूप आकार में होता हैं। वृक्ष की फैली हुई टहनियों से भी स्तूप की तुलना श्रृग्वेद[4] में की गई हैं। महापरिनिब्बान सुत्त में महात्मा बुद्ध ने स्वीकार किया है कि स्तूप प्राचीनतम काल में बनाते थे। आनन्द को उत्तर देते हुए व्यक्त करते है–

''चातुम्महापये रज्जो चक्कवतिस्स धूप करोन्ति एंव धातुम्महापये तथा गस्स थूपो कातब्बो''

अर्थात् चक्रवर्ती राजा के लिए चार महापयों के मिलने से बने हुए चौराहे पर स्तूप का निर्माण किया जाता हैं। ऐसे ही चुतष्महापथ तथागत के लिए बनाया जाना चाहिए।

1. रौलेण्ड, पृ० 36 2. श्रृग्वेद, 7/2/11 3. वही, 7/2/11 4. श्रृग्वेद, 1/24/7

शाब्दिक निष्पति की दृष्टि से स्तूप शब्द की संरचना स्तुत धातु में संरचित हैं। इसका अभिप्राय स्तुति करना, प्रशंसा करना एंव आदर करने से अभिप्रेरित किया गया हैं। पाली में इसे "थूह" नाम से जाना गया हैं। गहनावलोकन से स्पष्ट होता हैं कि स्तूप निर्माण के प्राथमिक समय में यह महापुरूषों का स्मारक स्थल था। बौद्धकाल में बुद्धावशेषों एंव दृश्यों के आधार पर इसका निर्माण किया जाने लगा। बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात सात क्षत्रियों और एंक ब्राह्मण ने स्तूप का निर्माण कराया था। कालान्तर में अशोक ने आठ स्तूपों से अस्थियां निकलवाकर बहुतायत स्तूपों का निर्माण कराया। स्तूपों पर जन सामान्य स्तुति करने जाता था। बुद्ध और महालोगों की अस्थियां, दांत या भस्म अथवा अवशेष को सोने अथवा अन्य किसी धातु के कलश में बन्द करके जिस स्थान पर रखा जाता था। उसी स्थान या समाधि को स्तूप कहा जाता हैं।

<u>स्तूप का वास्तु शिल्पः</u> सर्वप्रथम स्तूप का निर्माण अलौकिक बुद्ध के अस्थियों से आरम्भ हुआ। पहले अस्थियों को मिट्‌टी से ढ़क्कर उन पर थूहा बना दिया जाता था। अनन्तर कच्ची या पक्की ईटों का प्रयोग किया जाने लगा। विकसित स्तूप के प्रमुख अंग अधोलिखित है।

1. महावेदिका
2. अण्डाकार रूप
3. हर्मिका
4. छत्रावली
5. तोरण द्वार
6. ध्वज

1. **<u>महावेदिकाः</u>** इसका निर्माण नींव पर किया जाता था। मौर्यकालीन स्तूपों के चारों ओर पाषाण वैण्ठनी बनायी जाती थी। इनके कुछ अवशेष प्राप्त हुए हैं। प्रारम्भिक समय में काष्ठ की वैदिका बनायी जाती थी। उपरान्त विकसित अवस्था में प्रस्तर की वेदिका का निर्माण किया जाना प्रारम्भ हुआ। इसमें चार दरवाजे होते थे।

2. **अण्डाकार रूपः** महावेदिका के ऊपर एक अण्डाकर आकृति का थूह निर्मित किया जाता था। इस थूहे को कलाशास्त्र वेत्ताओं ने अण्डनाम प्रदान किया हैं। प्रारम्भिक काल में स्तूप की ऊंचाई कम होती थी। परन्तु परवर्तीकला में व्यय के अनुपात से ऊंचाई अण्डाकार रूप में बढ़ती गई। शीर्ष भाग को वृत्ताकार न करके उसे चपटा बनाया जाता था। अस्थियां अन्य अवशेषों का जहां पर रखा जाता था। उस पर पाषाण या ईटों को ठोस ढांचा बनाकर गोलाकार गुम्बद बना दिया जाता था।

3. **हर्मिकाः** अण्डाकार स्वरूप के शीर्ष भाग पर इसका निर्माण होता था। स्तूप का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग यह होता था इसी को हर्मिका नाम दिया गया था। इसका शाब्दिक अभिप्राय देव स्थान है। धुलोक के समकक्ष इसकी तुलना कल्पित थी। इसी के अन्दर बुद्धावशेषों को रखा जाता था।

4. **छत्रावलीः** हर्मिका के उपर तीन छत्र बनाए जाते थे। स्तूप–वास्तुकला के विकास के साथ ही इनकी संख्या में परिर्वतन हुआ और ये तीन के स्थान पर सात बनाये जाने लगे।

5. **तोरण द्वारः** वेदिका के चारों और चार तोरण द्वार बनाये जाने की प्रथा थी। इसके मूल में स्वास्तिक था। चार दिशाओं पूरब, पश्चिम, उत्तर एंव दक्षिण को स्वास्तिक रूप माना गया था। इन चारों दिशाओं के चार अधिपति माने गये थे। पूर्व में धृतराष्ट्र, पश्चिम में विरूपाक्ष, उत्तर में वैश्रवण कुबेर एंव दक्षिण में विरूढ़क स्वामी रूप में माने गये थे। ''चातुर्महाराज'' रूप में इनकी उपसना वैदिक काल से ही प्रचलित थी। इसी कल्पना के अनुरूप सांची एंव भरहुत में तोरण द्वारों का निर्माण किया गया था। इन पर अभिकल्प विभिन्न प्रकार का बनाया जाता था। जिससे स्तूप शोभा में वृद्धि होती थी और ऐतिहासिक तथ्यों की प्रज्ञापना करने में सहायता होती हैं।

तोरण द्वार के स्तम्भों पर अभिकलप अंकित किया जाता था। भिन्न–भिन्न काल में विभिन्न प्रकार का दृश्य प्रदर्शित किया गया। शिल्प प्रदर्शन में लोक प्रचलित एंव पूर्व

मान्यता को सथान दिया गया था। कला शास्त्र वेत्ताओं के अनुसार स्तूप विश्व सृष्टि का रूप था। इसके महास्वरूप का जनमानस पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता था। चक्र महात्मा बुद्ध के धम्भ चक्क पवत्तन का प्रतीक था। दार्शनिक दृष्टि से देखा जाए तो विश्व चक्र की तरह धुमा करता हैं।

वैदिक थूप एंव स्तूप में बहुत समानता हैं। जिस तर यूप का चार भाग कल्पित था, उसी प्रकार इसमें भी पाया जाता है। इसलिए यह कहना समीचीन है कि स्तूप की उत्पत्ति वैदिक मान्यताओं के आधार पर हुआ।

अशोक ने ऐसे कई स्तूप बनवाए। अशोक के स्तूपों का सातवीं सदी में चीनी यात्री हवेनसांग ने तक्षशिला श्रीनगर, थानेश्वर, मथुरा, कन्नौज, प्रयाग, कौशाम्बली, श्रावस्ती, वाराणसी, सारनाथ, वैशाली, गया, कपिलवस्तु, ताम्रलिप्ति आदि स्थानों में देखा था और इनकी ऊंचाई लगभग 22 मी0, 32 मी0, 64 मी0 और 100 मी0 तक होती थी। तक्षशिला में जिस स्थान पर अशोक की दन्त मुद्रा के अंकित कपट लेख के अनुसार कुणाल को अन्धा किया गया था, वहां कुणाल स्तूप बना दिया गया था। और बाद में इसे परिवर्द्धित कर विशाल स्तूप बना दिया गया था। हवेनसांग ने इस स्तूप को भी देखा था। उत्खनन में इस स्तूप के अवशेष प्राप्त हो गए हैं। यधपि आज अशोक के अधिकांश स्तूप नष्ट हो गए है परन्तु सारनाथ में उसके द्वारा निर्मित धर्म राजिका स्तूप का निचला भाग आज भी विधमान हैं। सांची में अशोक ईटों का एक विशाल स्तूप बनवाया था। जिसका परिवर्द्धित रूप आज भी विद्यमान है। यह साँची के तीन स्तूप समूह महत्वपूर्ण हैं।

साँची का स्तूपः स्तूपों की श्रृंखला में भोपाल के निकट सांची स्तूप समूह महत्वपूर्ण हैं। प्राचीन भारत में इसके सन्निकट का स्थान विदिशा अर्न्तराष्ट्रीय व्यापारिक केन्द्र प्राचीनतम समय में दशार्ण देश की यह राजधानी था। यहां पर स्तूप का निर्माण क्यों किया गया? इसका समाधान बौद्ध साहित्य में हैं। महावंश का कथन है कि अशोक उज्जयिनि जाते समय विदिशा में कुछ देर के लिए रूका था। उसने वहां पर व्यापारी श्रैण्ठी पुत्री से विवाह किया था। महेन्द्र एंव संधमित्रा इसी रानी के पुत्र–पुत्रियां थे। गूढ़ चिन्तनोपरान्त यह दृष्टिगत होता हैं कि अशोक इस स्थल से प्रभावित हुआ होगा। इसीलिए स्तूप का निर्माण वहां पर संभव हुआ।

स्तूप समूह एंव महास्तूपः सांची एंव आसपास से सं0 1, 2, 3 विशेष महत्व का हैं। जिनकी अवस्थिति साँची में हैं। गौतम बुद्ध के शिष्य सारिपुत्र एंव महामौदगल्यान का अस्थि अवशेष एंव फूल स्तूप संख्या तीन में सुरक्षित हैं। अशोक ने ईट के माध्यम से साँची स्तूप का निर्माण कराया था। शुंगकाल में इसी स्तूप पर प्रस्तर आच्छादन किया गया। इसका व्यास 126′ और ऊचाई 54′ था। इसकी सर्वाधिक विशेषता यह है कि इसमे चूने के बिना चिनाई का प्रयोग किया गया है। कला शास्त्र वेत्ता डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा हैः भारत में यह चूने के बिना चिनाई का पहला नमूना हैं।

महास्तूप की रूपरेखाः साँची का स्तूप आकार में अर्धचन्द्रमा तुल्य या उलटे कटोर जैसा हैं। इसे त्रिमेधि स्तूप कहा गया हैं। त्रिमेधि कहने का तात्पर्य तीन रूप में विभाजित हैं। अधोभाग की मेधि, मध्यभाग की मेधि और हर्मिका की मेधि रूप में इसे सुसज्जित किया गया हैं। भुतल पर स्तूप के चतुर्दिक प्रस्तर का फर्श बनवाया गया हैं। यह अधोभाग या जहां महावेदी का निर्माण कराया गया था। यह 11 फुट ऊँची अलंकरण विहीन हैं। डा0 अग्रवाल ने इसकी सुन्दरता की तुलना इंग्लैण्ड के स्टोन हैंज से किया हैं। मध्यभाग में निर्मित 16 फुट की ऊँचाई पर हैं। स्तम्भ, सूची एंव उष्णीषों पर किसी प्रकार का अंकन नहीं किया गया हैं। वेदिका अलंकरण विहिन सादी बनायी गयी हैं। दो फुट की दूरी पर बने प्रत्येक स्तम्भ की ऊँचाई 9 फुट हैं। स्तम्भ के शीर्ष पर कलाकार उष्णीय का निर्माण हुआ था। निर्माण शैली काष्ठ कला से प्रभावित हैं।

तोरण द्वारः महास्तूपों के चारो तरफ चार तोरण द्वारों का निर्माण किया गया था। कालक्रम के परिवेश में यह कहा जा सकता है कि सर्वप्रथम दक्षिण तारेणद्वार का निर्माण हुआ था। इसके पश्चात क्रम से उत्तरी, पूर्वी एंव पश्चिमी तोरण द्वारों की रचना हुई। प्रत्येक द्वार में दो स्तम्भों का प्रयोग है। इनकी ऊँचाई 34′ है। इन पर शिल्प का अंकन है। शिल्प के अन्तर्गत गौतम बुद्ध की घटनाओं, यक्ष प्रतिमाओं, पशुओं की प्रतिभाओं एंव पुष्प पत्तियां है।

दक्षिणी तोरण द्वारः प्रारम्भिक समय का बना दक्षिणी तारेण द्वार हैं। इसमे तीन बड़ेरिया बनी हुई हैं। शीर्ष बड़ेरी पर श्री लक्ष्मी की मूर्ति का अंकन हैं। लक्ष्मी के समक्ष दो गज गढ़ा लिए प्रदर्शित हैं। प्रसिद्ध कला शास्त्रवेत्ता फूसे ने इसे माया देवी का प्रतीक माना हैं। परन्तु डा0 अग्रवाल ने सिरिमा या लक्ष्मी मानना अधिक युक्तिसंगत बताया हैं। इसी द्वार पर विरूढ़क का अंकन हैं। इसके साथ ही पशुओं में हृदयसंघाट, मृग संघाट एंव गज संघाट का अंकन कला चातुर्यता को प्रदर्शित करता हैं। बौद्धिवृक्ष एंव बौने लम्बोदर कुम्भाण्ड का अंकन सजीव जान पड़ता हैं। पीछे की और तीन बडेरियां हैं। प्रथम बडेरी पर मध्य भाग की ओर चार वृक्षों से धीरा हुआ तीन स्तूप हैं। इसके नीचे चार बौद्धिवृक्ष हैं। स्तूप के अण्डाकार भार्ग पर शतकीर्ण युग के कलाकार आनन्द का नाम अंकित हैं। मध्य बडेरी पर गौतम बुद्ध के जन्म की घटना का अंकन हैं जो ह्रदन्त जातक की कथा से मिलता जुलता हैं। अधोभाग की बडेरी पर सात क्षत्रिय गणराज्यों के उस संघर्ष का विवरण है जो बुद्धावशेष के कारण हुआ था। तीन बडेरियों के शीर्ष भाग पर चक्रव्युह का अलंकरण स्तूप की शोभो में अभिवृद्धि करता है।

बाएं स्तूप के आगे की ओर अशोक रथारूढ़ अपने रक्षकों के साथ दिखाया गया हैं। इसी स्तम्भ पर बीच के दृश्यों में अशोक अपनी दो महारानियों के साथ, बुद्ध का चुड़ामटट 33 देवताओं के द्वारा बुद्ध के केशों का पूजन एंव मुष भाग पर हस्त्यकारोही, अश्वरोही एंव पैदल बुद्ध का चित्रण हैं। स्तम्भ के पश्चिमी भाग पर वस्त्र आभुषण एंव तीन मिथुन कल्पवृक्ष की शाखाओं से अदभुत दिखाए गए हैं। इनका समीकरण अनिश्चित हैं। दायें स्तम्भ पर चार नागराज एंव चार नागियों एंव बौधि वृक्ष का दृश्य है जो अतीव उत्कृष्ठ नमूना प्रतीत होता है।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि दक्षिणी तोरणद्वार पर चार सिंहो को अंकन हैं। जो सिंह पीठ सटाकर आगे मुंह किए हुए और दो मुंद पीछे किए हुए प्रदर्शित हैं।

उत्तरी तोरण द्वारः इस तोरणद्वार के सबसे नीचे की और वेस्तसन्तर जातक की कथा उत्कीर्ण हैं। ऊपर की और धर्मचक्र, दोनो तरफ एक यक्ष, त्रिरत्न एंव सिंह का प्रदर्शन हैं। चक्र पूजा का अदभुत दृश्य दिखाया गया हैं। किनारे की तरफ एक गज लक्ष्मी का

अंकन हैं। इसमें लक्ष्मी पदमासन पर बैठी हुई हैं। एंव गज सनाल कमल के ऊपर स्थानक मुद्रा में हैं। मध्य बड़ेरी पर मार धर्षण का चित्र हैं। बाएं स्तम्भ, भीतर की तरफ, मध्य भाग की तरफ भी विभिन्न शिल्पों का अंकन प्राप्त हैं। बाहरी भाग पर सुवर्ण सृष्टि का अंकन व्रनी सूक्त के लक्ष्मी से अतुलनीय हैं। स्त्रियों के गले में मांगलिक माला का प्रदर्शन हैं। मांगलिक प्रतीकों में कुल 24 हैं। जिनमें वैजयन्ती, मीन बुगल, श्रीवत्स, कमल, कल्पवृक्ष, पुष्प, स्रजं एंव चक्र तथा दो अन्य चिन्ह हैं। लक्ष्मी का अंकन भी किया गया हैं।

<u>पूर्वी तारेण द्वारः</u> सात मानुषी बुद्ध का अंकन अन्य तोरण दारों की भांति यहां भी प्राप्त होता हैं। मध्य बडेरी पर धर्म चक्र का स्थावन है। और चारों तरफ हिरन दिखाए गये हैं। नीचं भाग पर गजराज द्वारा बोधि वृक्षोपासना का दुश्य हैं। पीछे की ओर मल्लगण के सेवा यदि द्वारा अस्थि ले जाने का दुश्य हैं। धातु का युद्ध जो अन्य तोरण द्वारों पर हैं। यहां भी उपलब्ध होता हैं। निचली बडेरी पर मार धर्षण का दृश्य हैं। बांए स्तम्भ के ऊपर की तरफ चार मिथुनों का दुश्य हैं। भीतर की और श्वाम जातक का दृश्य हैं। दाहिने स्तम्भ पर महाकपि जातक का स्तम्भ हैं। भीतरी भाग में सम्बोधित का दृश्य बहुत ही सुन्दर प्रतीत होता हैं।

हाथी, सिंह, हिरन, जंगली अनेक पशु पक्षी आदि की आकृतियों की बहुलता हैं। सांची में भरहुत की अपेक्षा जातकों की संख्या कम हैं। शीर्ष भाग में पशु संघाट की कल्पना भरहुत से अधिक हैं। श्री लक्ष्मी पूजा को विशेष महत्व प्रदान किया गया हैं। मार्शल ने लिखा है कि सांची के कलाकारों की विधियां दिखाई पड़ती हैं। इनमें दृश्य सांसरिक एंव विषय वासना से सम्बन्धित हैं।

<u>हर्मिकाः</u> अशोक के युग में हर्मिका का निर्माण किया गया था। धातुगर्भमजूषा में ढक्कन का व्यास 5′ 6″ है और मौटाई 18″ हैं। वेदियों की प्रत्येक दिशा 21′ 26″ माप में बनी थी कला सरिता का उत्कृष्ठ उदाहरण हैं।

स्तम्भ :–

मौर्यकालीन कला का सर्वोत्कृष्ठ उदाहरण अशोक द्वारा निर्मित स्तम्भों में परिलक्षित होता हैं। डा0 वासुदेवशरण अग्रवाल[1] ने इसका मूल्यांकन करते हुए लिखा है कि ''इसके निर्माण में शिल्प का कोशल तो है ही, इनकी कल्पना भी अत्यन्त मौलिक संभवतः स्वय सम्राट की देन हैं। सम्राट के मन में एक तो धर्म सम्बन्धी महान आदर्श था दूसरे इसे स्तम्भ शीर्षकों में व्यक्त करने की योजना थी।''

फाह्यान ने अशोक द्वारा निर्मित 6 स्तम्भों एंव ह्वेनसांग ने 15 स्तम्भों का उल्लेख किया हैं। हवेनसांग ने कापित्थ स्तम्भ, श्रावस्ती स्तम्भ, कपिलवस्तु स्तम्भ, कनकमुनि बुद्ध का स्मारक स्तम्भ, लुम्बिनी का स्तम्भ, कुशीनगर का स्तम्भ। ''सारनाथ मार्ग का स्तम्भ महाज्ञान का शीर्ष स्तम्भ, वैशाली स्तम्भ, राजगृह स्तम्भ एंव पाटलिपुत्र में निर्मित दो स्तम्भों का विवरण व्यक्त किया गया हैं। पुरातत्व वेत्ताओं के प्रयास के उपलब्ध स्तम्भों का विवरण इस प्रकार हैं। –:

1. चारसिंह शीर्षक से आबद्ध सारनाथ स्तम्भ
2. सांची स्तम्भ
3. रामपुरवा स्तम्भ (प्रथम)
4. रामपुरवा स्तम्भ (द्वितीय)
5. सिंहशीर्ष से आबद्ध लौरियानन्दन स्तम्भ
6. लौरिया का अरराज स्तम्भ
7. इलाहाबाद स्तम्भ
8. कौशाम्बी स्तम्भ
9. लुम्बिनी प्रस्तर स्तम्भ
10. निगलिवा स्तम्भ
11. बखिरा स्तम्भ
12. संकाश्य स्तम्भ
13. टोपरा तथा मेरठ का स्तम्भ

इसके अतिरिक्त पटना संग्राहलय में सुरक्षित कुछ स्तम्भ अभी हाल में प्राप्त हुए हैं।

1. डॉ॰ वासुदेव अग्रवाल, भारतीय कला, पृ॰ 106

स्तम्भों की विशेषताएः—

स्तम्भों को सूक्ष्म अध्ययन करने हेतू उन्हें भूमिगत भाग या अधोभाग, मध्यभाग या तना और उर्ध्वभाग या शीर्ष तीन भागों में विभाजित किया जाना आवश्यक हैं। स्तम्भों के अधोभाग में मयूर की आंकृतिया प्राप्त होती हैं। इन पर चमकदार पालिश की गयी हैं। पालिश की विशेष्ता यह हैं कि उनमें चमक अभी भी विद्यमान हैं। मध्यभाग चुनार प्रस्तर से बनाया गया था जिनकी चौड़ाई क्रमशः ऊपर की और कम होती गई हैं। इन पर चमकदार पालिश दिखाई पड़ती हैं। शीर्ष भाग में इतनी कलाकारिता का प्रयोग किया गया हैं। जो मन को मोह लेती हैं। शीर्ष भाग में कहीं सिंह, कहीं वृषभ, कहीं गज, कहीं अश्व एंव कहीं मकर का अंकन हैं।

प्रमुख स्तम्भों का विवरण इस प्रकार हैः—

बसाढ़ बखीरा स्तम्भः—

इसके शीर्ष पर सिंह का अंकन किया गया हैं। सिंह की आकृति में सुन्दरता कम दिखाई पड़ती हैं। सिंह मुद्रा को देखने में कृत्रिकता एंव काष्ठशिल्प का अनुकरण दिखाई पड़ता हैं।

संकाश्य गजशीर्षक में ऊपर हाथी एंव कमलयुक्त घट हैं। में अण्डाकार रूप हैं। रामपुरवा स्तम्भ में ऊपर वृषभ का अंकन है, जो ललित मुद्रा में निर्मित किया गया हैं। शिल्पी द्वारा बनाया गया यह विशिष्ट उदाहरण है। लौरियानन्द गढ़ स्तम्भ शीर्ष पर सिंह उठग मुद्रा में बैठा दिखाया गया है। चौकी पर पंक्ति में हंस का अंकन हैं। रामपुरवा स्तम्भ इसी परम्परा में बनाया गया मालूम पड़ता हैं।

सारनाथ स्तम्भः—

सारनाथ स्तम्भ का निर्माण अशोक ने महात्मा बुद्ध के 'धम्मचक्क पवतन' के उपलक्ष में कराया गया था। यह स्तम्भ अशोक के समस्त स्तम्भों में सर्वोत्कृष्ट एंव कला का एक अदभुत उदाहरण प्रस्तुत करता हैं। इस स्तम्भ में शीर्ष के नीचे गज, वृषभ, सिंह एंव अश्व की आकृतियों का अंकन हैं। इसमे सजीवता परिलक्षित होती हैं। शीर्ष 50 ऊंचे

स्तम्भ पर टिकाया गया हैं। परन्तु प्रकृति के प्रकोप के कारण इसकी ऊँचाई काफी कम हो गई हैं।

स्तम्भ का शीर्ष 6 भागों में विभाजित हैं, जिन्हें नीचे का भाग, स्तम्भयष्टि, पूर्णघट, गोलअंड, चार सिंह एंव महाचक्र के नाम से अभिप्रेरित किया जा सकता हैं। इस प्रकार स्तम्भ बनाने की परम्परा का उल्लेख श्रृग्वेद और उसके बाद तक प्राप्त होता हैं। पूर्णघट लहराती हुई कमल की पंखुड़ियों से ढ़का हैं। इस नाम और रूप को लेकर वैभव्यता हैं। पाश्चात्य मनीषी इसे घंटाकृति नाम देते हैं। परन्तु डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल ने इसका खण्डन करते हुए इसे पूर्ण घट ही माना हैं।

सारनाथ स्तम्भ के अंडाकार भाग पर वृषभ, गज, अश्व एंव सिंह का अंकन हैं। महावंश में इन पशुओं को 'चतुष्पद पंक्ति' नाम से अभिप्रेत किया गया हैं। इस प्रकार के अंकन की परम्परा सैन्धव संस्कृति से लेकर उन्नीसवी सदी तक दिखाई पड़ती हैं। बौद्ध मान्यता के अनुसार महानदियों के उदगम स्थल पर बने चार द्वारों के रक्षक रूप में पशुओं को अंकन हैं। बाल्मीकि ने इन्हें मांगलिक द्रव्य माना हैं। निष्कर्षतः यह कहना न्याय संगत हैं। कि जैन, बौद्ध एंव ब्राह्मण की दृष्टि से इन पशुओं का महत्व प्राचीनतम काल से ही हो रहा हैं। गोल अंड पर चार चक्रों का अंकन हैं। जो चारो दीशाओं का प्रतीक हैं। अंड की चौकी पर चार सिंहो का अंकन हैं। इससे चक्रवर्ती सम्राट की शक्ति की सूचना मिलती हैं। महात्मा बुद्ध ने चक्रवर्ती एंव योगी दोनो का गुण विद्यमान था। जिसका भाव इस सारनाथ स्तम्भ में दिखाया गया हैं। सिंह के उपर एक विशाल चक्र स्थापित किया गया था। इस चक्र में बत्तीस तीलियां थी। चक्र के विषय में वासुदेव शरण अग्रवाल का कथन हैं।

''भारतीय कला और साक्ष्यों से विदित होता हैं कि यह चक्र वही था जिसे विभिन्न सन्दर्भो में ब्रह्मचक्र, भवचक्र, कालचक्र, एंव सुदर्शन चक्र आदि नामों से जाना गया यदि विराट पुरूष का नारायण चक्र था और ललित विस्तर में स्पष्ट आया है कि इस सहस्रार चक्र को पूर्व युगों के अनेक बुद्धों ने प्रवर्तित किया था।''

हमारे हिन्दु मान्यता में चक्र विष्णु जी का आयुध होता है। श्रृग्वेद[1] में उसे ही काल चक्र की संज्ञा प्रदान की गई हैं। यह स्तम्भ शीर्षकला का सर्वोत्कृष्ट नमूना हैं। रावकृष्ण

1. ऋग्वेद, 1/155/6, 1/64/11-13

दास ने इसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है–

''कही से लबरपन, भोंढापन, और भद्‌दापन नहीं है,
न एक छेनी कम लगती है और न ही एक छेनी अधिक।''

बी0 जी0 गोखले[1] के मत से सिंह प्रतिष्ठावान व्यक्ति एंव उदानत संकल्प का प्रतीक है।

" The lion is no ordinary lion a denizeh of the freightening
will roaring of an evening across a mountain spur in search of
prey but a symbol of diginified strength and noble determination.

मार्शल इसे सर्वश्रैष्ठ कलाकृति मानते हैं और स्मिथ ने इसे आश्चर्यचकित कर देने वाली कलाकृति माना है। उनका विचार है कि बलुए प्रस्तर से बनाए गये इस स्तम्भ की चमक अभी भी इतनी बनी हैं। परन्तु चमक कैसे पैदा की गई हैं। इसके रहस्य को आज तक कोई नहीं जान पाया हैं। कला शास्त्रवेत्ता डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल[2] ने इसकी प्रतीकात्मकता को स्पष्ट करते हुए लिखा है। ''सारनाथ स्तम्भ धर्म का महान प्रतीक है जिसमे प्रत्येक भाग को जानबूझकर स्थान दिया गया है, यह भी ज्ञात होता है कि इस धार्मिक प्रतीक में सम्राट अशोक ने स्वंय अपना दृष्टिकोण व्यक्ति, धर्म, राज्य और विश्व के विषय में प्रकट किया है।''

ब्लाख महोदय के विचार से चार पशुओं का अंकन चार देवताओं की अभिव्यक्ति करता हैं। इन्द्र, सूर्य, शिव एंव दुर्गा के वाहन के रूप में इन्हें जाना जा सकता हैं। फूसे का विचार है कि इन चार पशुओं का सम्बन्ध गौतम बुद्ध के जीवन की चार घटनाओं से हैं।

उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि चार पशु प्राचीनतम समय से धर्म के प्रतीक में माने जाते हैं। सामाजिक व्यवस्था की और दृष्टि डालने पर परिलक्षित होता है कि वर्ण एंव आश्रम की संख्या चार थी। इसमें विशेष भाव सन्निहित हैं। इस पर अध्ययन की आवश्यकता है इसमें शौर्य, तेज, मोक्ष, कल्पना, एंव स्वभाविकता का सांमजस्य हैं।

1. बी० जी० गोखले, एशीयन्ट हिस्ट्री एण्ड कल्चर, पृ० 180
2. डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, भारतीय कला, पृ० 116

5. चैत्य निर्माण कलाः–

चैत्य बौद्धों के सामूहिक पूजा मन्दिर थे। किवदन्ती के अनुसार अशोक ने चैत्य का निर्माण बहुत अधिक संख्या में कराया। ठोस चट्टानों को छेनी हथोड़े के माध्यम से विशाल मण्डप बनाने की कला का विकास अशोक के समय से प्रारम्भ हुआ जो विकसित होता चला गया। सामान्यतः यह एक बड़ा वर्तुलाकार रूप में होता था। पुरावशेषों में इनके प्रमाणों का अभाव हैं।

<u>**प्रस्तर वेण्टनी एंव वेदिकाः**</u> स्तूप एंव विहार के चारो और पाषाण की वेष्टिनी बनायी जाती थी। गया में बने चैत्य के चारों ओर वेदिका का निर्माण किया गया था। लेख के आधार पर इसे मौर्य युग का माना जाता हैं। ह्वेनसांग ने इसकी विवेचना की हैं। वेदिका के स्तम्भों एंव उनको आबद्ध करने वाली शिलापट्टिकाओं पर कमल का फूल बनाया गया हैं। कहीं मध्य में कमल की भिन्न–भिन्न आकृतियाँ है और कहीं पशुओं में वृषभ, अश्व, हाथी, सिंह एंव मकर आदि का अंकन हैं। चित्रों का उट्टकेन ढीक उसी प्रकार किया गया हैं। जिस तरह काष्ठ में अंकन हैं। सारनाथ, वैशाली, एंव रामपुरवा में ऐसी ही वेष्टनी प्राप्त होती हैं। सारनाथ की वेदिका प्रस्तर से बनाई गयी थी, जो अतीव आकर्षक, सुन्दर एंव चिकनी है। सांची एंव भरहुत स्तूप के चारो तरफ भी इस तरह की पाषाण वेण्टिनियां है, जो कला की दृष्टि से विशेष महत्व रखती हैं। लुम्बिनी में अशोक ने लिखा है कि उसने प्रस्तर की ठोस वेदिका निर्मित कराई।

6. गुहा निर्माण कलाः–

पर्वतों की गुफाओं की चट्टानों को काटकर उनमें कक्ष या कमरे और सभागृह बनाने की कला का सूत्रपात मौर्य युग में हुआ। बराबर पहाड़ी, नागार्जुनी पहाड़ी एंव लोमस श्रृषि गुफा में अनेक कलाकृतियां का निर्माण किया। बराबर प्राचीनतम समय के (प्रवर गिरि) के नाम से जाना जाता हैं। इसमें चार गुफांए है। यहां के लयणों को प्रचलित नाम सातधर है। इसमे एक गुफा कर्ण चोपड़ की है, जिसे अशोक ने निर्मित कराया। यह साढ़े तैतीस फिट लम्बा, चौदह फीट चौड़ा एंव दस फीट ऊंचा हैं। अशोक ने अपने राज्य

के बारहवें वर्ष में दूसरी सुमा गुफा का निर्माण कराया। इसकी छत की ऊंचाई बारह फीट तीन इंच हैं। लोमस गुफा वास्तु विन्यास की दृष्टि से सुदामा गुफा से साम्य रखती हुई प्रतीत होती हैं। दीवारे चिकनी और चमकीली हैं। पास के स्तम्भों को आबद्ध करने के लिए काष्ठ की तरह आंकडों का प्रयोग किया गया हैं। बराबर समूह की एक अन्य गुफा ''विश्व झोपड़' नाम से प्रसिद्ध हैं। इसके भीतरी कक्ष का व्यास ग्यारह फिट हैं। नागार्जुनी समूह के अन्तर्गत गोपी गुफा का विन्यास सुरंग तुल्य हैं। यह 88' 6'' लम्बा, 19' 2'' चौड़ा एंव 10' ऊंचा हैं। इसका निर्माण दशरथ द्वारा किया गया था। इस गुहा को देखने से स्पष्ट का जा सकता है कि इस युग में गुहा शिल्प परस्पर की पूर्णतया रक्षा की गयी।

7. **शिलालेखः**— मौर्य सम्राट अशोक ने अपने उपदेशों, सूचनाओं, एंव घोषणाओं को प्रचारित करने के लिए शिलालेखों का उट्टेकन कराया। उसने पर्वतीय चट्टानों पर कुछ लेखों का उट्टेकन कराया। आठ स्थानों से उपलब्ध चौदह शिलालेख विशेष प्रसिद्ध हैं। शाहबाज गढ़ी, मान् सेहरा, कालसी, गिरनार, धौली, सोपारा, जोगद, इरागुड़ी, रूपनाथ, वैराट एंव मास्की आदि हैं। स्तम्भ लेखों में टोपरा स्तम्भ लेख प्रमुख हैं। शाहबाजवाढ़ी एंव मानसेहरा अभिलेख खरोष्ठी लिपि में हैं। इसके अतिरिक्त अन्य प्राकृत भाषा में हैं। शिलालेख कलापूर्ण ढ़ंग की लिपि में लिखे गए हैं।

मौर्यकाल पर विदेशी प्रभाव

भारत के 'प्राचीन पूर्व' का अभिन्न अंग होने और बहुत पुराने जमाने से एक समान सांस्कृतिक विरासत में भागीदार होने के अलावा ई० पू० आठवीं और सातवीं शताब्दी से ईरान के साथ भारत के धनिष्ठ सांस्कृतिक संपर्क का कमोवेश निश्चित प्रमाण मौजूद हैं। डैरियस के साम्राज्य का अंग बनकर उत्तर पश्चिम तथा सिंधु घाटी ने ईरान के साथ संपर्क और सरल बना दिए।

ई० पू० 330 में सिंकदर महान ने शक्ति शाली ईरानी सामान्य को चकनाचूर कर दिया था। किन्तु अपनी विज्य को सुदृढ़ करने के प्रयास में इस ग्रीक सम्राट ने ईरानी साम्राज्यवाद तथा ईरानी संस्कृति और कला का अभिभूत कर देने वाला प्रभाव महसूस किया था। इस साम्राज्य विस्तार की प्रक्रिया भारतीय राज्यों से भी इसका संपर्क हुआ। सांस्कृतिक संपर्क की इस प्रक्रिया में ईरानी कला पर किसी प्रकार का प्रभाव हुआ या नहीं इस सन्दर्भ में विचार करना आवश्यक हैं।

मौर्य काल की महान कृतियों के उदगम और स्रोत का प्रश्न पर्याप्त महत्व रखता है। मौर्य युग के पूर्व कला अवशेषों का प्राय अभाव हैं। पर साहित्य में ऐसे साक्ष्य पर्याप्त है जिससे प्रागमौर्य युग में भी कला परम्परा का अस्तित्व सिद्ध होता है।

किन्तु प्रश्न यह है कि अशोक के सिंहशीर्षक जैसी कला भी क्या इससे पूर्व थी जिसके शिल्पकर्म की परिपूर्णता उसे गोलिया कर नतोन्नत बनाने, चतुर्भुज दर्शन की उकेरी और सजावट इत्यादि विविध अंगों में थी। मौर्य कालीन चमक का कोई उदाहरण इससे अधिक पूर्व के युगों में या कालान्तर में नहीं मिलता। अतः स्वभाविक प्रश्न है कि मौर्य युग में कला की जो अभूतपूर्व उन्नति हुई इसका कारण और स्रोत क्या था।

मौर्य कला पर विदेशी प्रभाव स्वीकार करने वाले विद्वानों में मार्शल महोदय विशेष मुखर थे। इन्होंने स्तम्भों की रचना, उनकी पशु आकृतियों तथा इसकी चमक को ईरान का अनुकरण मानते हुए शैली और सिद्धहस्त दोनों दृष्टियों से मौर्यकला को बाह्य प्रभाव में अंकुरित स्वीकार किया है। मार्शल का यह भी कहना है कि प्रथमतः मौर्यो द्वारा पाषाण प्रयोग ईरानी प्रभाव का परिणाम है। मौर्यो ने ईरानियों के अनुकरण से ही

अभिलेखों का अवलोकन कराया। बौक्ट्रिया के यवन शासकों के माध्यम से ही मौर्य युग में ईरान की अनेक सांस्कृतिक परम्पराएं भारत में विकसित हुई। ईरान में नक्शा–ए–रूस्तम, पर्सीपोलिस तथा इस्तख के भवनों के अनुकरण पर पाटलिपुत्र के राजप्रसाद का निर्माण हुआ।

स्टैला कैम्रिश के अनुसार अशोक स्तम्भों के घण्टाशीर्ष एवं पशु संघाट ईरान की इस हखामनी कला की देन है जो पर्सिवोलिस के खण्डहरों से प्राप्त होती है।

बेन्जामिन रोलो की धारण है कि जिस प्रकार भारतीय अभिलेख पश्चिमी एशियाई देशों के अनुकरण पर लिख गए, इसी प्रकार अशोक के स्तम्भ भी भारतीय मूल के नहीं है, वरन उन्हें मेसोपोटामिया की संस्कृति से अनुग्रहित किया गया है।

डॉ0 एस0 के0 सरस्वती का अनुमान है कि हेनिलिस्टिक संस्कृति ने मिश्र ईरान आदि देशों में जिस कला परम्परा का आधार रखा, उसी के आधीन मौर्यकला भी विकसित हुई।

पर्सीब्राहन ने भी मौर्य कला को ईरानी कला का प्रतिफल माना है तथा स्तम्भों, शीर्षकों एवं चमक की समानता को प्रमाण स्वरुप स्वीकार किया है। इन्होंने पशु आकृतियों में यूनानी, ईरानी एवं मिश्र कला का सम्मिलित प्रभाव बतलाता है। इसी प्रकार प्रायः समस्त पाश्चात्य तथा उनसे प्रभावित भारतीय विद्वानों ने मौर्य कला का उदभव बाह्य परिवेशों में स्वीकार किया है। इनके मत में :–

1. ईरानी तथा मौर्य स्तम्भ एक समान है।

2. स्तम्भों पर पशु शीर्षक ईरानी स्तम्भों के पशु शीर्षकों के समान हैं।

3. ईरानी स्तम्भों के ऊपर की घण्टाकृति मौर्य स्तम्भों में पशु आकृतियों के नीचे बनी है।

4. मौर्य स्तम्भों में वही चमक है जो ईरानी स्तम्भों में है।

5. मौर्यो के पूर्व कला में पाषाण प्रयोग का अभाव है। ईरान में पाषाण मूर्तिकला एवं वास्तुकला का मुख्य उपादान था। मौर्यो ने इन्हीं से कला में स्थायित्व प्रदान करने के लिए पाषाण का प्रयोग सीखा।

डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल सबल तर्कों से ईरानी मत का खण्डन करते हुए मौर्य कला को पूर्णतः भारतीय परिवेश में अंकुरित स्वीकार करते हैं। वैदिक युग से जो कला

परम्परा विकसित हो रही थी, मौर्यों ने उसे ही पाषाण उपादान प्रदान कर स्थायित्व दिया। अशोक ने बौद्ध धर्म, मौर्य साम्राज्य तथा अपने आदर्शों को अमरत्व प्रदान करने के लिए ही उनकी अभिव्यक्ति के साधान कला को पाषाण प्रयोग से स्थिरता प्रदान की। वैदिक साहित्य में सहस्र–स्थूल मण्डपों का जो उल्लेख है, उन्हीं का विकसित रुप पाटलिपुत्र के राजप्रसाद में दृष्ट्व्य है अशोक स्तम्भ अशोक की मौलिक प्रतिभा की देन है। वह प्रबल बौद्ध समर्थक था। शाक्य सिंह महात्मा बुद्ध को सिंह के रूप में प्रदर्शित किया है। सिंह सिंहासन का प्रतीक ही है। स्तम्भ तो वैदिक युग में यज्ञीय यूप के रूप में परमशक्ति का प्रतीक था। स्तम्भ शीर्ष पर घण्टाकृति औंधा पद्म पुष्प या पूर्ण घट का प्रतीक है। मंगल सूचक कलश भारतीय कला में वैदिक युग से ही प्रचलित है। सारनाथ शीर्षक के चार पशु चार दिशाओं या दिगपालों के प्रतीक हैं। वास्तव में सारनाथ स्तम्भ तो अशोक के जीवन के दर्शन का प्रतीक है।

मौर्यकला की तकनीकी की विशेषताओं पर ध्यान दिया जाए तो यह ज्ञात होत है कि यह कला काष्ठ कला की अनुवर्तिनी है। डा0 सरस्वती का विचार ध्यातव्य है जिन्होने मौर्य कला को काष्ठ कला तथा हरवामनी कला को पाषाण कला का उदाहरण माना है।

In technique, the Mouryan pillar partakes of the character of wood carvers on carpenters' work, the Achaemenian, that of a mason.

स्पूनर ने सर्वाधिक महत्व मौर्यकला की चमक को दिया है तथा उसे ईरानी स्तम्भों के चमक का अनुकरण माना है। डा0 अग्रवाल ने सुदृढ़ प्रमाणों से इस मत को खण्डित करते हुए इसे भारत की मौलिक प्रतिभा की उपज स्वीकार किया है। मौर्य युग से पूर्व ही सूत्रों के काल में चमकने की कला का ज्ञान साहित्य से प्राप्त होता है। आपस्तम्ब श्रोतसूत्र में उल्लेख है कि ''चिकना करने वाले पदार्थ से चिकना किया।''[1]

''श्लक्ष्णोकरणेः कुर्वन्ति।'' पुरातत्व से भी यह युक्ति प्रमाणित है।

चित्रित धूसर मूदभाण्ड तथा उत्तरी कृष्णमार्जित मूदभाण्डों की तिथि 6वीं शताब्दी ई0 से तीसरी शताब्दी ई0पू0 के मध्य स्वीकार की गई है। इनके ढीकरे उत्खनन में अनेक स्थलों से प्राप्त होते हैं। भू–गर्भ में निहित होने पर भी इनकी चमक में कोई परिवर्तन नहीं है। यदि भारतीय कलाकार मूदभाण्डों पर ऐसी चमक उत्पन्न कर सकता था तो

1. डॉ० रुद्ल प्रसाद यादव, प्राचीन भारतीय मूर्तिकला का संक्षिप्त विवेचन, पृ० 25

क्या पाषाण खण्डों के लिए ईरानी कला से उसे नकल करने की आवश्यकता पड़ी। वास्तव में यह इतिहास की साम्राज्यवादी परम्परा की देन है कि "भारत में जो भी विकास हुआ वह विदेशियों का अनुकरण है।[1]

डा0 अग्रवाल ने ठीक ही कहा है कि "यूनानी इतिहासकारों की दृष्टि में जब पाटलिपुत्र का राज प्रासाद सूसा तथा एकबतना के राजप्रसादों से सभ्यतर है तो यह कहना युक्तिसंगत है कि ईरानियों ने भारतीयों का अनुसरण किया न कि भारतीयों ने ईरान का।[2]

ईरानी तथा मौर्य स्तम्भों में अनेक भिन्नताएं ज्ञात होती हैं:

1. ईरानी कला पूर्णतया पाषाण कला में जबकि मौर्य कला पाषाण कला है।
2. ईरानी स्तम्भ चौकी पर खड़े हैं। जबकि मौर्य स्तम्भ बिना चौकी या अधार के हैं।
3. ईरानी सतम्भ अनेक खण्डों को जोड़कर बनाए गए हैं जबकि मौर्य स्तम्भ एकाश्मक है।
4. ईरानी स्तम्भों पर अनेक उत्कीर्ण शीर्षक हैं जबकि मौर्य स्तम्भों पर ऐसे शीर्षकों का अभाव है।
5. ईरान के स्तम्भों पर घण्टे की आकृति है किन्तु मौर्य सतम्भों का कथित घण्टा उससे भिन्न है। मौर्य स्तम्भों के शीर्ष पर जो घण्टाकृति है उसके मध्य में पिटारे जैसा भाग बाहर निकला है तथा पंखुड़ियां स्पष्ट है। औंधे पद्मपुष्प या घट की अनुकृति प्रतीत होती है।

इसी प्रकार मौर्य कला पर विदेशी प्रभाव के जो आधार प्रदत्त है, ये स्वयंमेंव निराधार प्रतीत होते हैं। भारत में हड़प्पा युग से ही मूर्तिकला विकासोन्मुख थी। मौर्य युग में जब उसे उपयुक्त वातावरण उपलब्ध हुआ तो वह कुसंगति हो उठी। यह सम्भव है कि राजनैतिक एवं सांस्कृतिक संबंधों के कारण ईरानी कला ने मौर्य कला को प्रोत्साहित किया हो। किन्तु इस आधार पर मौर्य कला को हरवामनी कला का अन्धानुकरण नहीं कहा जा सकता। मौर्ययुगीन कला तो भारतीय प्रतिभा की ओरस संतान है जिसमें मौर्य शक्ति, शान्ति एवं समृद्धि का दर्शन किया जा सकता है।

1. वही, पृ० 26   2. डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, भारतीय कला, पृ० 140

उपसंहार

मानव जीवन की विगत विशिष्ट घटनाओं का ही दूसरा नाम इतिहास है। आज की प्रत्येक घटना कल का इतिहास बन जाएगी। अतीत के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा कलात्मक विकास और परिवर्तन भौतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान एवं पुनरूत्थान वर्तमान में इतिहास बनकर प्राचीन मानव तथा उसके कृत्यों की स्मृति दिला रहे हैं।

भारतीय धर्म तथा कला का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि यहाँ की सभ्यता और संस्कृति का। अतीत ओर वर्तमान का निकट संबंध स्थापित करने का कोई माध्यम अथवा साधन चाहिए जो युगों की लम्बी दूरी को कम कर सके, इतना कम कि पुरातन नूतन बनकर हमारे सम्मुख की कृतियां उपस्थित हो जाएं। ऐसा साधन साहित्यकारों एवं विभिन्न कलाकारों की कृतियां हो सकती है जो अतीत की स्मृतियां दिला सके। साहित्यकारों की रचनाएं एवं वास्तुकला, चित्रकला तथा मूर्तिकला के कलाकारों की रचनाओं में केवल इतना ही अन्तर है कि एक मुखरित है, दूसरा मूक, परन्तु दोनों की उपयोकिता निर्विवाद है।

मौर्यों के दीर्घकालीन शासनकाल में भारत में जिस सुख शान्ति का वातावरण बना उसके परिणामस्वरूप कला का विकास हुआ। इस समय कला के रूप तथा विषयों का बहुमुखी प्रतिभा प्राप्त हुई ओर आगामी युग की कला पर इसका प्रभाव पड़ा।

____

1. डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल, भारतीय कला, पृ0 140

मौर्यकालीन कला की अपनी विशेषताएं हैं जिनके कारण उनकी पहचान हैं। ठोस पाषाण स्तम्भों में उसके दण्ड की भव्य सादगी और उसके शीर्ष पर स्थित पशुओं की सुन्दर कलापूर्ण मूर्तियां दोनो का सुन्दर समन्वय हैं। ये सभी स्तम्भ पाषाण के एक विशाल टुकड़े से काटे जाते थे। और खदानों से भारत के विभिन्न दूरस्थ प्रदेशों में ले जाए जाते थे। अतः ये शिल्पियों और तत्कालीन इंजीनियस कला की सर्वोच्चता को प्रकट करते हैं। स्तम्भों के शीर्ष में सौन्दर्या अनुपात सूक्ष्मता पूर्वक अंकन, अनुरूपता इस

बात का प्रमाण है कि मौर्य युग में पाषाण में उत्कीर्ण करने की कला और मूर्तिकला सर्वोच्चता की ऊंचाई पर पहुंच चुकी थी। इसी प्रकार पर्वतीय गुफाओं में उपासना गृहों, सभा गृहों तथा प्रेक्षागृहों के निर्माण करने की भी अपनी पवित्र शैली थी। पाषाण स्तम्भों और गृहों की दीवारों को शीशे के समान चमकीला और चिकना करने का जो कला चातुर्य था, वह भी मौर्यकला की अपनी विशिष्टता हैं। डा0 विन्सेंट स्मिथ का कथन है कि ''कठोर पाषाण का चिकना करने की कला इस पूर्णता तक पहुंच गई थी कि यह कहा जा सकता है कि वर्तमान युग की कलात्मक शक्तियों के लिए यह एक खोई हुई कला ही है।'' भाव प्रकाशन में मौर्य कला का कोई जवाब नहीं था। स्मिथ के अनुसार मौर्यकला पर सम्राट की सत्ता की छाप स्पष्ट दिखलाई देती हैं। मौर्य सम्राट उसके जीवन चरित्र आदर्शों और धार्मिक विचारों तथा सिद्धान्तों और प्रशासकीय बातों का निरूपण देखने को मिलता है। मौर्यकला अपनी भावना कृतियों में पूर्ण रूपेण भारतीय थी कि मौर्य सम्राटों ने ईरान और यूनान के कला लक्षणों व तत्वों को युक्त रूप से अपनी कला में अपनी लिया था। बी0 एन0 लुनिया के अनुसार मौर्यकालीन कला की आत्मा भारतीय थी।

यह भी सही है कि भारतीय कालीन कला की उन्नति मौर्य सम्राटों के आश्रय में हुई, इसलिए वह दीर्घ अवधि तक कायम नहीं रह सकी। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि तत्कालीन लोक जीवन व साधारण लोगों की धारणा व विचाराधार का स्पष्ट अंकन मौर्यकालीन कला में नहीं हुआ है लेकिन अपनी विशेषताओं के कारण मौर्य कालीन कला आधुनिक कला प्रेमियों के लिए पथप्रदर्शक व प्रेरणा स्त्रोत दोनों ही हैं।

इसकी विशेषताएं निम्नलिखित हैं।

1. इस युग के स्मारकों, स्तूपों आदि पर जो ओप किया गया है वह आज भी यथावत हैं।
2. भाव प्रकाशन तथा प्रदर्शन में पूर्ण समर्थता हैं।
3. कठोर पाषाण तथा कांट छांट कर बनाए गए स्तम्भों की निर्माण शैली मौलिक है और इनके प्रतीक तथा अन्य चिन्ह कलात्मक यर्थाथता से ओत प्रोत हैं।
4. लोक कला की शैली प्रभावाशाली, अभूतपूर्व और मौलिक हैं।

मौर्य युगीन लोक कला के रूप में निम्नांकित विशेषतांए विवेच्य हैं।

1. यह यक्षिणी शक्ति एंव ऐश्वर्य के देवता के रूप मे उपास्थ थे, इसलिए इन्हें महाकाय बनाया गया है जिनकी मांसपेशियां एंव शारीरिक दृढ़ता से शक्ति का प्रस्फुरण होता हैं।
2. यद्यपि ये मूर्तियां चतुर्मुख दर्शन के सिद्धान्त पर तराशी गई हैं किन्तु कलाकार ने सम्मुख दर्शन पर ही अधिक बल दिया।
3. सिर पर उष्णीश, कन्धों तथा भुजाओं पर उत्तरीय जो वक्ष पर आबन्द्ध है, नीचे धोती तथा उदरबन्ध या मेखला विशुद्ध भारतीय वेशभुषा के परिचायक है।
4. कर्ण कुण्डल गले में हार वक्ष लाकेट तथा बाहुओं पर बाजूबंद इत्यादि आभूषण परम्परागत रूप में उत्कीर्ण हैं।
5. उनके वस्त्र शरीर से भीगे वस्त्रों की भांति चिपके हैं। धारियां अस्पष्ट हैं किन्तु गांठ दुश्य हैं।
6. इनका रूप कठोर, शैली अपरिपक्व है किन्तु आभूषण एंव वेशभूषा उनमें प्रायः प्रतिष्ठित किए गए हैं।

कुछ पाश्चात्य विद्वान तथा उनसे प्रभावित भारतीय विद्वानों ने मौर्य कला का उद्भव बाह्य़ परिवेश में स्वीकार किया हैं। इनके मत हैं:

1. ईरानी तथा मौर्य स्तम्भ एक समान हैं।
2. स्तम्भों पर पशु शीर्षक ईरानी स्तम्भों के पशु शीर्षकों के समान हैं।
3. ईरानी स्तम्भों के ऊपर धण्टाकृति मौर्य स्तम्भों में पशु आकृतियों के नीचे बनी हैं।
4. मौर्य स्तम्भों में वही चमक है जो ईरानी स्तम्भों में हैं।
5. मौर्य के पूर्व कला में पाषाण प्रयोग का आभाव हैं। ईरान में पाषाण कला मूर्ति एंव वास्तुकला का मुख्य उपादान था। मौर्यो नें इन्हीं से कला में स्थायित्व प्रदान करने के लिए पाषाण का प्रयोग सीखा।

डा0 ए0 के0 कुमार स्वामी इन समानताओं को भारतीय तथा ईरान की समान सांस्कृतिक धरोहर मानते हैं। इनके अनुसार भारतीय तथा ईरानी आर्य मूलतः एक स्थान के निवासी थे। अतः इनकी परम्पराओं में समानता सहज ही हैं। डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल सबल तर्कों से ईरानी मत का खण्डन करते हुए मौर्य कला को पूर्णतः भारतीय परिवेश में अंकुरित स्वीकार करते हैं तथा उन्होनें ही लिखा है कि ''यूनानी इतिहासकारों की दृष्टि में जब पाटलिपुत्र का राज प्रासाद सूसातथा एकबतना के राज प्रासादों से भव्यतर है तो यह कहना युक्तिसंगत है कि ईरानियों ने भारतीयों काअनुकरण किया न कि भारतीयों ने ईरानियों का।''

ईरानी तथा मौर्य स्तम्भों में अनेक भिन्नताएं ज्ञात होती हैं।

1. ईरानी कला पूर्णतः पाषाण कला है जबकि मौर्य कला पाषाण कला होते हुए भी काष्ठ कला पर आधारित हैं।
2. ईरानी स्तम्भ अनेक खण्डों को जोड़कर बनाए गए है जबकि मौर्य स्तम्भ एकाश्यक है।
3. ईरानी स्तम्भ चौकी पर खड़े हैं जबकि मौर्य स्तम्भ बिना चौकी या आधार के है।
4. ईरानी स्तम्भों पर अनेक उत्कीर्ण शीर्षक हैं जबकि मौर्य स्तम्भों पर ऐसे शीर्षकों का अभाव हैं।
5. ईरान के स्तम्भों पर घण्टे की आकृति है किन्तु मौर्य स्तम्भों का तथाकथित धण्टा उससे भिन्न है। मौर्य स्तम्भों के शीर्ष पर जा धण्टाकृति है उसके मध्य में पिटारे जैसा भाग बाहर निकला है तथा पंखुड़ियां स्पष्ट हैं। औधें पद्म पुष्प या घर की आकृति प्रतीत होती हैं।

इस प्रकार मौर्य कला पर विदेशी या ईरानी प्रभाव के जो आधार प्रदत्त है वे स्वंयमेव निराधा प्रतीत होते हैं।

भारत में कला के निर्माण की परम्परा अटूट हैं, उसका वास्तु विशद हैं, उसके

मूर्तनों का परिणाम विपुल है जिसका निर्माण प्रारम्भ से हिन्दू शासन तक हजारों वर्ष लम्बा हैं। किसी भी देश के वास्तु निर्माण का सिलसिला इतना लम्बा नहीं रहा,न ही मूर्तनों में इतना वेविध्य मिलता है। अन्य देशों को इतने लम्बे समय तक इतनी गहराई में किसी देश ने प्रभावित नहीं किया।

चीनी वस्तु अधिकांश महान दीवार कुछ प्रासादों तक सीमित रह जाता हैं। उसके चित्रण का पराक्रम ईरान के पूर्व विभाग को ही छूकर समाप्त हो जाता हैं। मिस्र पिरामिड विशाल हैं पर सुन्दर नहीं, मिस्र मन्दिर विशद हैं पर उनमें वेविध्य नहीं, वहां मूर्तन हैं परन्तु नीरस, नीर्जीव व पाषाणवत् लेकिन वह परम्परा भी लम्बी नहीं है, सुमेर का वास्तु उपेक्षणीय है, असूर्या में प्रासाद है पर वे ऊंगलियों पर गिने जा सकते हैं। ईरानी वास्तु और मूर्तल अभिराम और वैभवशाली हैं। इन्हें गिने और केवल दो पीठियों के पराक्रम तक सीमित हैं। क्लासिकल ग्रीमों में वास्तु की विद्या स्पार्टा और एथेन्स के बाहर ही नहीं निकल पाई। पारयेनन मन्दिर के निर्माण ने उन्हें इतना थका दिया कि राग और रेखाएं उनकी आपालिज के साथ ही लुप्त हो गई। हां मूर्तियां उन्होंने सड़के जरूर बनाई, हम्माम निर्मित किए। लेकिन भारत स्वंय जिया, युग युग काल के पोर पोर और उसने दूसरों का जीने दिया। प्राचीरों, दूर्गों, प्रासादों, देवालयों, स्तूपों, विहारों, की उसने अटूट, अविरल अधिकल्पना न खत्म होने वाली परम्परा खड़ी कर दी, उसकी असंखय मूर्तियों कारूप दर्शनीय था, प्राणवान था, आध्यात्म से आन्दोलित आत्मा की आस्था से ध्यान के विराम से रूप को भेद कर बाहर झांकता, प्राणियों को निर्भय करता तथा शरण देता, उसके चित्रों में आचरण की लहर है, आदर्श है। उन्होंने अपने राग नियोजक की आरुढ़ता तक को बांध लिया और भारत ने जो खोजा वह पाया, जो पाया वह बांटा। भारत ने अपने पड़ोस को भी निःसंकोच दिया। नेपाल तारा की अविराम मूर्तियां ढाली, तिब्बत ने भारत की देखाा देखी बोधिसत्वों के ललित विराम से अपनेसाथ मूर्तियां स्थापित की। लंका मं बोधिवृक्ष की ज्ञान शाखा लगे स्तूप खड़े हुए हैं।

भारत ने पूरब की ओर देखा और उन्हें परिधान दिए, प्रसाधन के उपकरण दिए, धर्म भाषा व कला दी। बर्मा, स्याम, मलय, कम्बुज, चम्पा, सुमात्रा, जावा में मन्दिर स्तूप देवालय और मन्दिर खड़े हो गए और अंगुपरवात, बारोबदुर आदि स्थापत्य के अदभुत

उदाहरण हैं। सिंन्धु घाटी में भारत ने जन हितार्थ पुर बसाए और नर्तकी को भी ढाला। द्रविड़ सभ्यता ने सुमेर की सीमाओं केपार अपनी संस्कृति को पहुंचाया। यहाँ के शिल्पियों ने पत्थर को काटकर गुफाओं कीा निर्माण किया, उनकी दीवारों पर इन्द्र और सूरज उतरे, छवि उन पर छलछला गई, उनमें विहार को, आवास बने, संसार के मानव द्वारा अचिन्त्य मानव मिथुन, अश्व गज धरे, स्तम्भों का निर्माण हुआ। मौर्य समय तक भारतीय कला का बहुत विकास किया तथा अशोक ने तो भारतीय कला पर चांद लगा दिए।

मौर्य युग में निर्माण शैली की दृष्टि गृण्मूर्तियां अधिकांशः हाथ से डोलियां का बनाई गई हैं। डोलिया शैली का जो हड़प्पा संस्कृति से दूसरी शताब्दी ई० पूर्व तक चलती रही। मौर्य काल में मूर्तियां बनाने में एक विशेषता और भी थी वे सांचों का प्रयोग नहीं करते थे। मौर्यकाल के बाद मूर्तियां बनाने में सांचों का व्यापक रूप से प्रयोग किया गया।

मौर्यकाल में निर्मित जो अनेक मूर्तियां प्राप्त हुई हैं वे मानव आकार की है। तथा चारों से कोर कर बनाई गई हैं। ''इनमें सम्मुख दर्शन की विशेषता है।''

आगरा मथुरा के मध्य परखग ग्राम में मिली मूर्ति 7 फिट ऊंची है तथा भूरे बलुए की प्रस्तर की बनी हुई है। दूसरी मूर्ति बेसनगर से प्राप्त हूई है जिसकी ऊंचाई 6 फिट 7 इंच है । पटना के दीदारगंज से प्राप्त स्त्री मूर्ति चंवर लिए हुए है तथा साढ़े पांच फिट ऊंची है तथा एक चौकी पर खड़ी है। मौर्यकालीन विशिष्ट चमक इसके सौन्दर्य और रूप में चार चांद लगा देती है। इस मूर्ति की चिकनाहट औ गतिशीलता इसे प्राणमय सजीव बना देती है। बुलन्दी बाग से प्राप्त मिट्‌टी के एक हंसते हुए बालक का सर मिला है।

मौर्यकालीन मूर्तीयों के तत्वों के परिचय से आगे चलकर कुषाण और गुप्तकालीन मूर्तियों को समझने में पूरीसहायता मिलती है। यह निश्चित है कि मौर्यकाल में लोक कला की शैली का अपना अस्तित्व था और शुंग, कुषाण तथा गुप्त कला पर जो गहरा प्रभाव डाला, वैसा मौर्य कालीन राजकीय शैली पर भी नहीं डाल सकी थी।[1]

मौर्य कला भारतीय कला के इतिहास मे युग प्रर्वतक है । हमारे पास कोई ऐसे प्राचीन अवशिष्ट स्मारक नहीं है जिनका संबंध मौर्यो से पूर्व की कला से स्थापित किया

1. वासुदेव शरण अग्रवाल, भारतीय कला

जा सके। मौर्य सम्राट असाधारण निर्माता थे।

मौर्य कला के नवीन एवं महान रूप का दर्शन अशोक के स्तम्भों में होता है। पाषाण के ये स्तम्भ उस काल की उत्कृष्ठ कला के प्रतीक हैं। इनका निरीक्षण करने पर दृष्टा के हृदय पर सौन्दर्यजन्य प्रभाव पड़ता है। इनका कलात्मक रूप सारगर्भित और मौलिक है।

पर्वतों को काटकर गुहाओं का निर्माण करना भारत की प्राचीन कला रही है। प्राचीन काल की अनेक गुहाएं मध्य प्रदेश में मिली हैं, जिनमें आदिवासी रहते थे। इस कला की पुनराबृत्ति पुनः मौर्ययुग तथा विशेष्कर अशोक के समय में हुई । इस काल की अनेक गुहाएं मिली है इन गुहाओं में भिक्षु निवास करते थे।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में दुर्ग विधान के साथ–साथ नगर निर्माण की व्यवस्था का भी उल्लेख किया गया है।[1] नगर ऊंचे स्थान पर बनाए जाते थे। मौर्य कालीन राज प्रासाद और भवन अत्यन्त भव्य, विशाल और सुन्दर होते थे।

स्तूप शब्द का उल्लेख ऋगवेद में मिलता है। मौर्य युग में स्तूप निर्माण शैली का पर्याप्त परिष्कार हुआ। कहा जाता है कि अशोक ने चौरासी सहस्र स्तूपों का निर्माण कराया था। आज अशोक निर्मित सतूपों में से सर्वोत्तम सांची और भरहूत के है।

मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल के निकट सांची में तीन स्तूप हैं, जिनमें से एक बड़ा तथा दो छोटे हैं। विद्वानों ने बड़े स्तूप का काल ई0पू0 तृतीय शती माना है। मूलरूप से यह स्तूप ईटों द्वारा बना था। इस स्तूप के धरातल का व्यास 121 फिट 6 इंच और इसकी ऊंचाई 66 फिट 6 इंच है जो बलुए पत्थर से निर्मित है। स्तूप के शिखर पर एक चतुष्कोण हर्मिका बनी हुई है। जिसके ऊपर एक दण्ड में संग्रहित छत्र है । स्तूप के गुम्बद के चारो ओर प्रदक्षिणा मार्ग हैं। स्तूप का गुम्बद और प्रदक्षिणा मार्ग वेदिका से घिरे हुए हैं। वेदिका की चारों दिशाओं में चार सुन्दर प्रवेश द्वार हैं। इन द्वारों के प्रत्येक स्तम्भ की ऊंचाई 18 फिट है। स्तम्भों के ऊपर की बड़ेरियों में चारों ओर तथागत के जीवन से पूर्व की घटनाओं का सजीव अंकन है। ऊंट, हिरण, वृषभ, मयूर और हाथी आदि का सुन्दर एवं यथार्थ चित्रण किया गया है।

मध्य प्रदेश में सतना जिले 16 कि0मी0 दूर भरहूत में आज स्तूप का कोई चिन्ह

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र, 2/2

नहीं है। कनिघम महोदय ने 1873 में इस स्थान पर एक बौद्धविहार के अवशेष तथा बौद्ध वेण्टिनी वेदिका के तीन खण्डों के साथ जुड़े देखे थे, जिन पर अलंकृत उष्णीय थे। और प्रवेश द्वार के स्तम्भ से, जो कभी तोरण का आधार था। स्तम्भों की ऊंचाई 9 फिट थी भरहूत के शिल्पकारों ने न केवल दैनिक जीवन का ही अंकन किया है वरन प्राकृतिक सौन्दर्य का भी सफ़ल चित्रण किया है।

---

1. वासुदेव शरण अग्रवाल, भारतीय कला,
2. कौटिल्य अर्थशास्त्रए 2/21

लगभग चालीस जातकों की कथाओं के उल्लेख इस स्तूप की बाढ़ पर देखे जा सकते हैं। बुद्ध के ऐतिहासिक जीवन के चित्र भी इस पर उत्कीर्ण हैं। जेतवन के दान की कथा सविस्तार यहाँ देखी जा सकती है। इसके अतिरिक्त हिन्दू देवी, देवियों, नागों, यक्षों–यक्षिण्यिों के भी अनेक चित्र अंकित है।

सारनाथ से एक पाषाण वेदिका प्राप्त हुई है जो आठ फिट चार इंच ऊंची है इसमें कोई जोड़ नहीं है। इस पर की गई पालिश में जा चमक है वह अशोक कालीन कलाकृतियों की भी विशेषता है। विदिशा और बौद्ध गया आदि स्थानों में अन्य वेदिकाएं मिली हैं। ये सभी कला की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

मौर्यकालीन कला का सूक्ष्म विवेचन करने पर यह स्पष्ट होजाता है कि यह कला अपने समय के जन–जीवन का चित्र बड़े ही यथार्थ रूप में प्रकट करती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋगवेद, वैदिक संशोधन मण्डल,1946
2. महाभारत, भंडारकर इंस्टीटियूट, पूना 1964
3. आर0जी0 भंडारकर, इण्डियन एण्टिक्वेरी, बम्बई, 1879
4. एन0 एन0 घोष, अर्ली हिस्ट्र ऑफ इण्डिया, प्रयाग, 1948
5. एन0 एन0 घोष, प्राचीन भारत का इतिहास
6. कनिंघम, दि स्तूप ऑफ भरहूत, लन्दन, 1879.
7. कुमार स्वामी, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, न्यूयार्क, 1965
8. जगन्नाथ, ए काम्प्रिहेंसिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया
9. जगदीश चन्द्र, सांची के स्तूप, शिखर प्रकाशन दिल्ली, 1982
10. जे0 जी0 घोष, इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टली
11. निहार रंजन राय, दि ऐज ऑफ नन्दा एण्ड मौर्या, कलकत्ता, 1965
12. नीलकण्ठ शास्त्री, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग दो: मौर्याज, बम्बई, 1957।
13. मोतीचन्द्र, भारतीय मूर्ति कला, पटना, 1957
14. राय चौधरी, पोलीटिकल हिस्ट्री ऑफ द एन्सियेन्ट इण्डिया, कोलकाता, 1953
15. श्रीराम गोयल, प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, जयपुर, 1982
16. रूदल प्रसाद यादव, प्राचीन भारतीय कला, नगीना प्रकाशन, चौखम्बा, वाराणसी, 1984
17. रूदल प्रसाद यादव, प्राचीन भारतीय मर्तिकला का संक्षिप्त विवेचन.
18. रामकृष्ण दास, भारतीय मूर्तिकला, नागरी प्रचारिणी भि, काशी, सं0 2019
19. राजकिशोर सिंह एवं इशा यादव, प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1982.
20. नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी, मथुरा की मूर्तिकला, पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा
21. पर्सीब्राहन, इण्डियन आर्किटेक्चर, तारापोरवाला, बम्बई।
22. बी0 जी0 गोखले, प्राचीन भारत, एशिया पब्लिशिंग हाऊस, मुम्बई,1957.
23. बी0जी0 सिन्हा, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं राजनैतिक चिन्तन, राधा पब्लिकेशन,

दिल्ली, 1991, पांचवा संस्करण।

24. बरूआ, दि भरहूत स्तूप, कलकत्ता,1937.

25. बी0 डी0 महाजन, प्राचीन भारत का इतिहास।

26. बी0 एस0 पुरी, इण्डिया देन दि टाइम ऑफ पतंजलि, मुम्बई, 1957.

27. बी0 एन0 लूनिया, भारतीय संस्कृति।

28. भगवत शरण उपाध्याय, भारतीय कला का इतिहास, पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1981.

29. भगवत शरण उपाध्याय, भारतीय कला की भूमिका, रणजीत प्रिंटर्स, दिल्ली, 1965.

30. रामजी उपाध्याय, भारत की संस्कृति साधना, रामनारायण लाल, इलाहबाद, 2016.

31. रोलेण्ड, आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर ऑफ इण्डिया। पेंग्विन बुक्स, 1959

32. वासुदेव शरण अग्रवाल, भारतीय कला, पृथ्वी प्रकाशन, वाराणासी 1966।

33. वासुदेव शरण अग्रवाल, प्राचीन भारतीय लोक धर्म। अहमदाबाद, 1964

34. वासुदेव शरण अग्रवाल, मथुरा कला, गुजरात विधान सभा, अहमदाबाद, 1964.

35. वासुदेव उपाध्याय, प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मन्दिर, बिहार हिन्दी अकादमी, पटना 1972.

36. वीणा पवन, भारतीय मूर्तिकला का इतिहास, ईस्टर्न बुक लिंकर्स , दिल्ली, 1991.

39. वाचस्पति गैरोला, भारतीय संस्कृति और कला, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ, 1973.

40. शशि अस्थाना, प्रि हड़प्पन कल्चर्स ऑफ इण्डिया इन दि बॉर्डर लैण्ड्स, बुक्स एण्ड बुक्स, दिल्ली, 1985.

41. शिव स्वरूप सहाय, भारतीय पुरातत्व के पृष्ठ

42. सत्यकेतु विद्यालंकार, प्राचीन भारत, श्री सरस्वती सदन, दिल्ली

43. सतीशचन्द्र, भारतीय मूर्तिकला, प्रतीक प्रकाशन इलाहाबाद, 1972

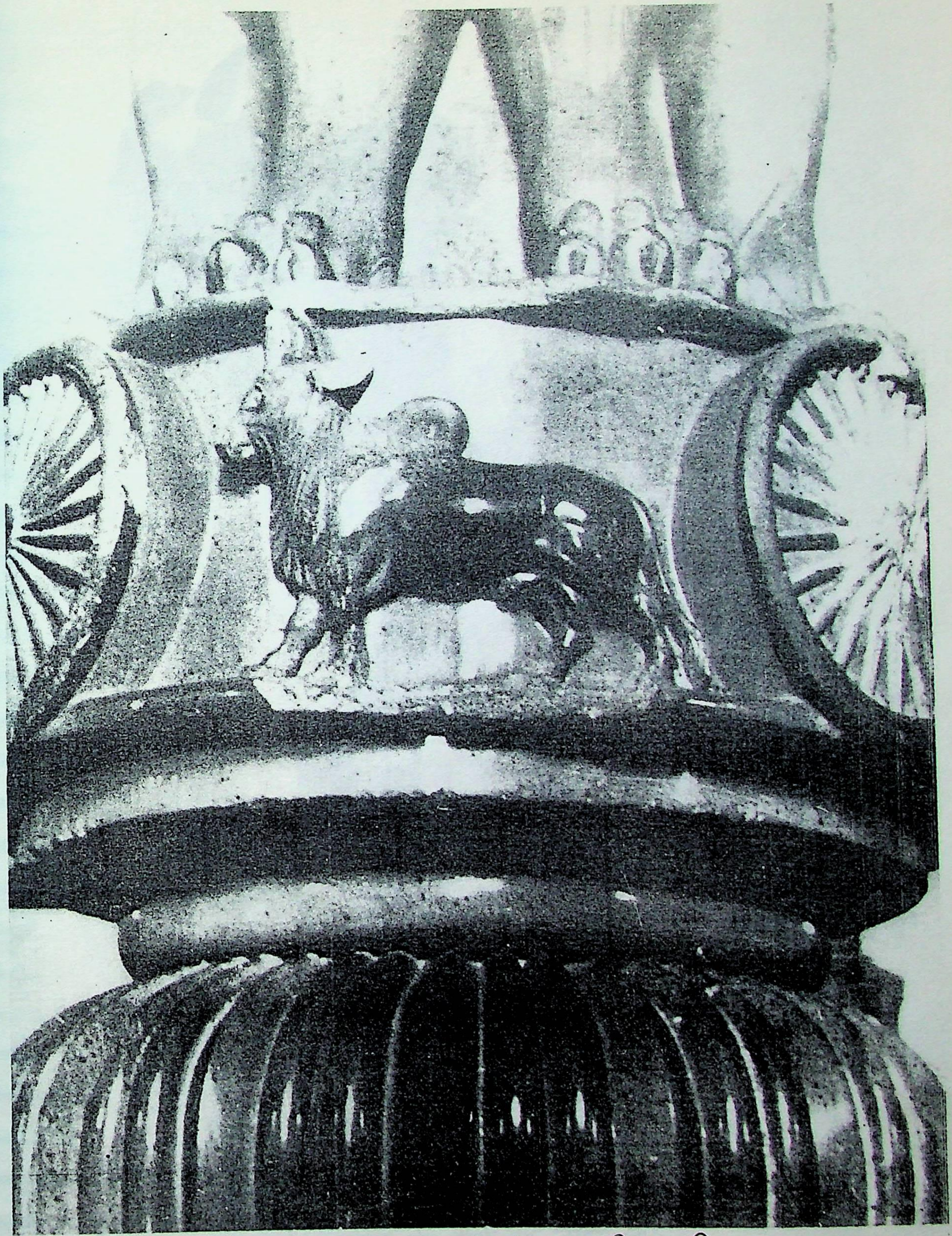
44. हरिदन्त वेदालंकार, प्राचीन भारत का राजनीतिक एंव सांस्कृति इतिहास उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ, 1972.



"बसाढ़-बखीरा सिंह
शीर्ष स्तम्भ"



"सारनाथ सिंह-शीर्षक"

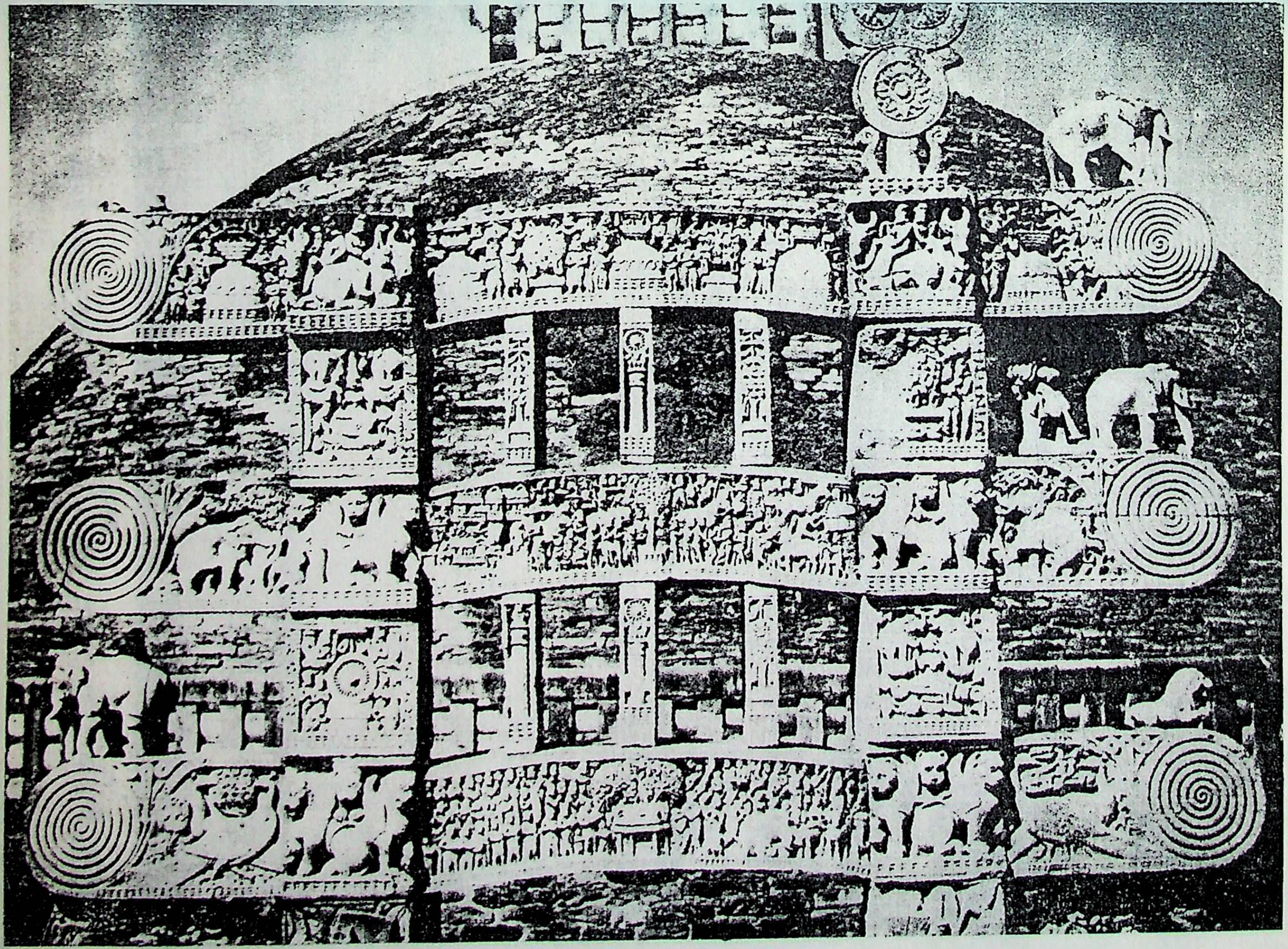


"सारनाथ शीर्ष, फलक पर डग भरते सांड का निकट चित्र"

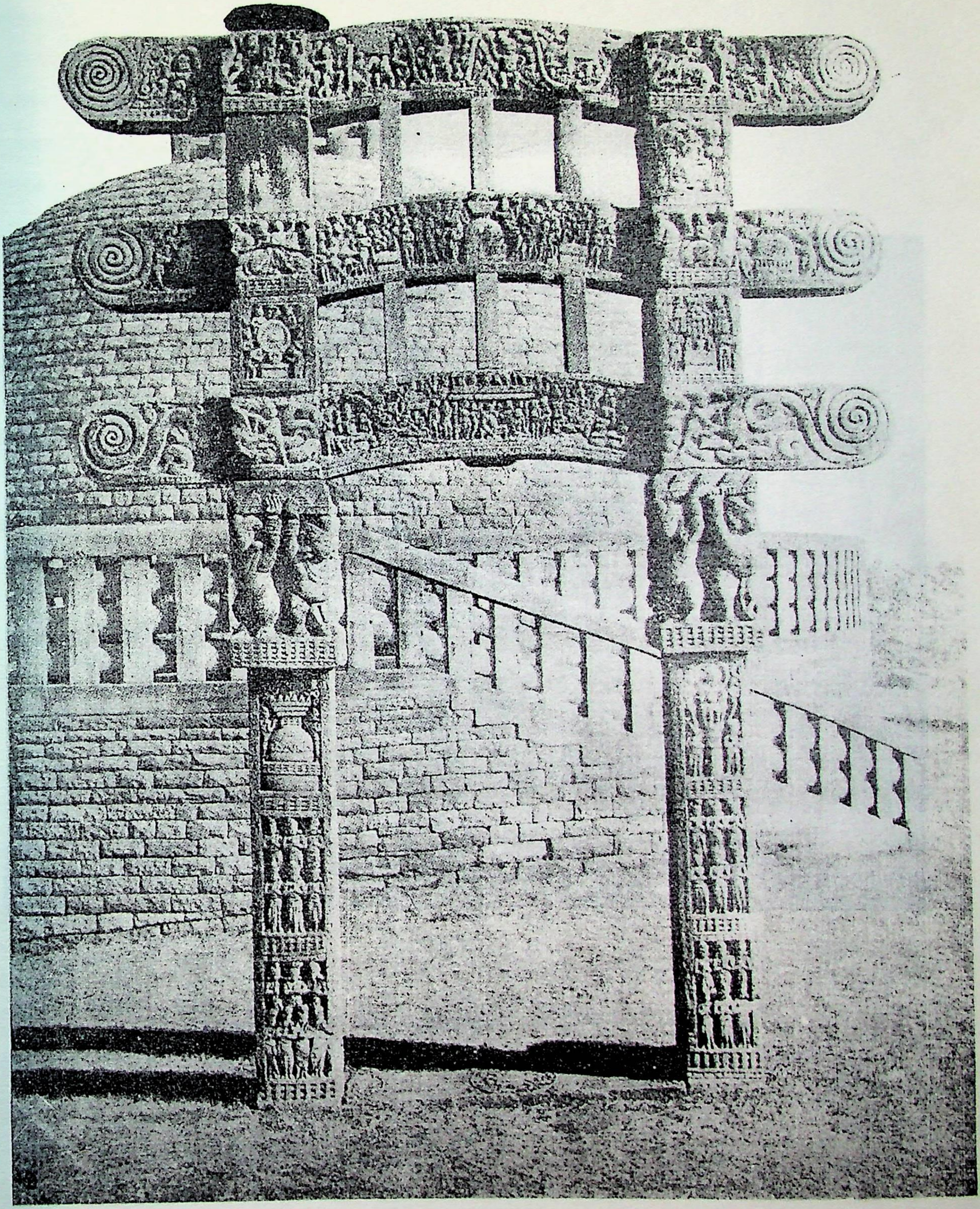


5

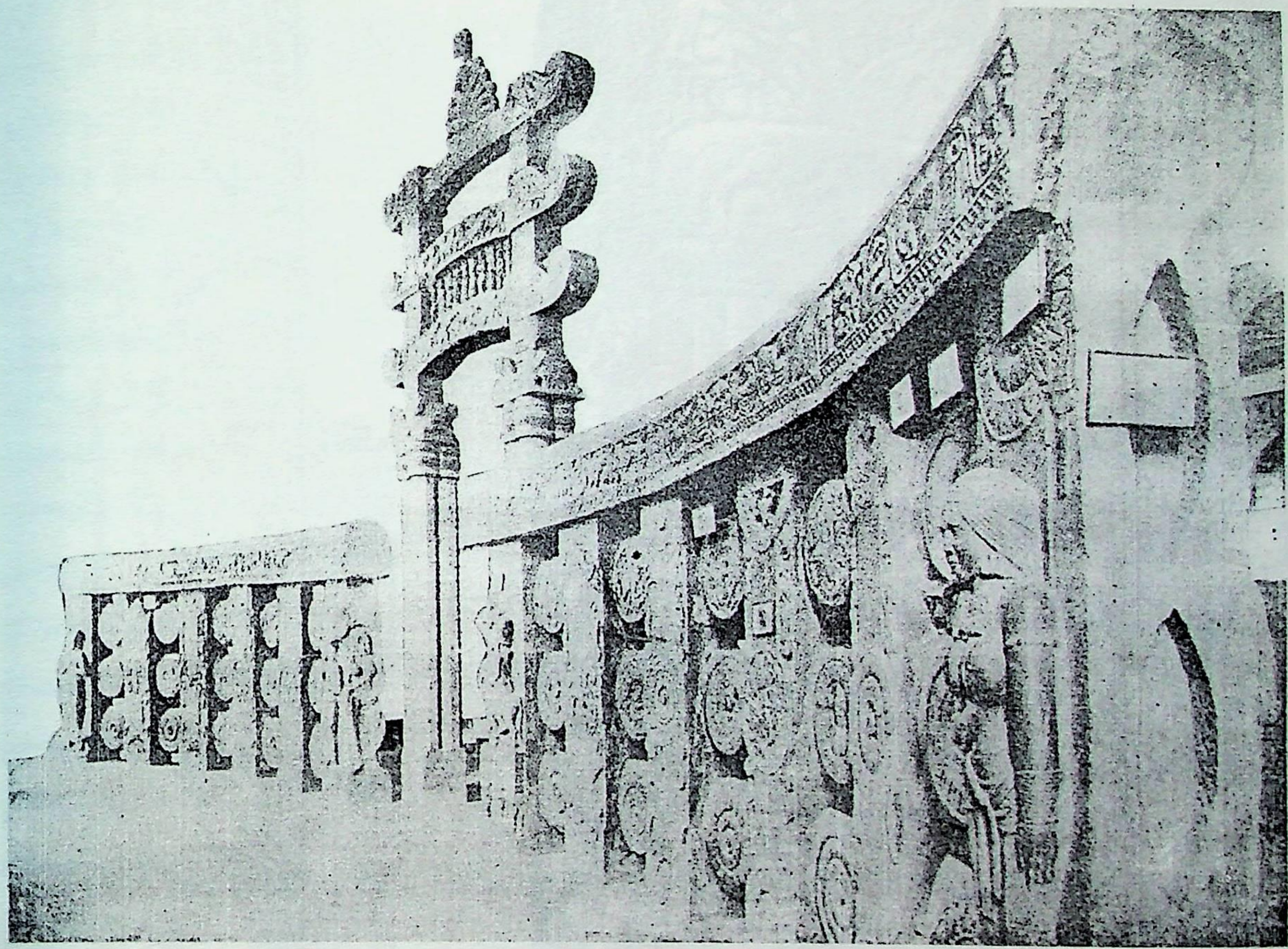
"रामपुरवा, अशोक स्तंभ के शीर्ष पर खड़ा सांड"



“साँची के महाचैतिय के पूर्वी-तोरणद्वार की[103] बड़ेरियों का उत्तर-पूर्व दर्शन”

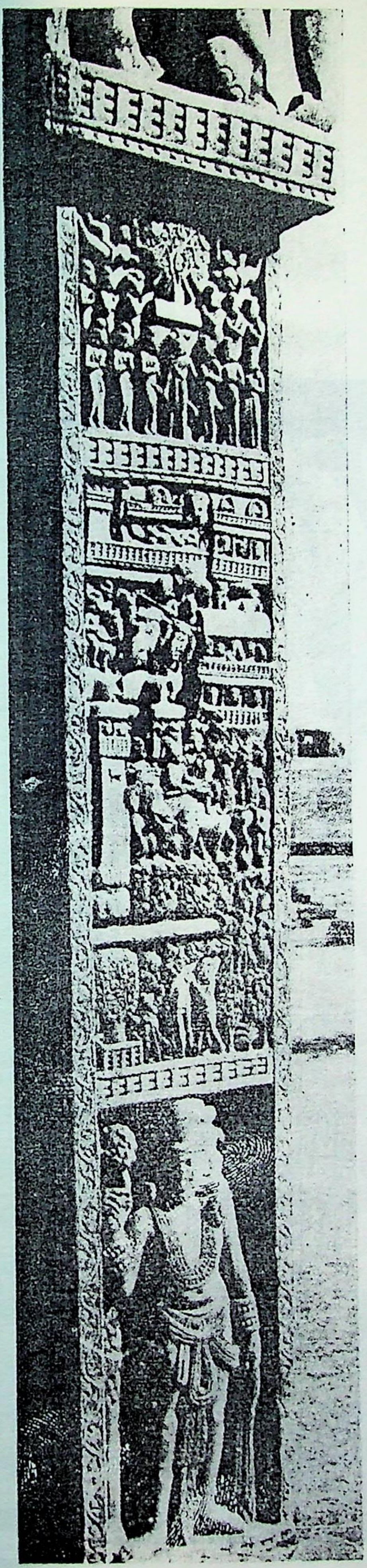


" साँची के स्तूप संख्या-3 के [redacted] द्वार तोरण का दक्षिणी दृश्य "



८५

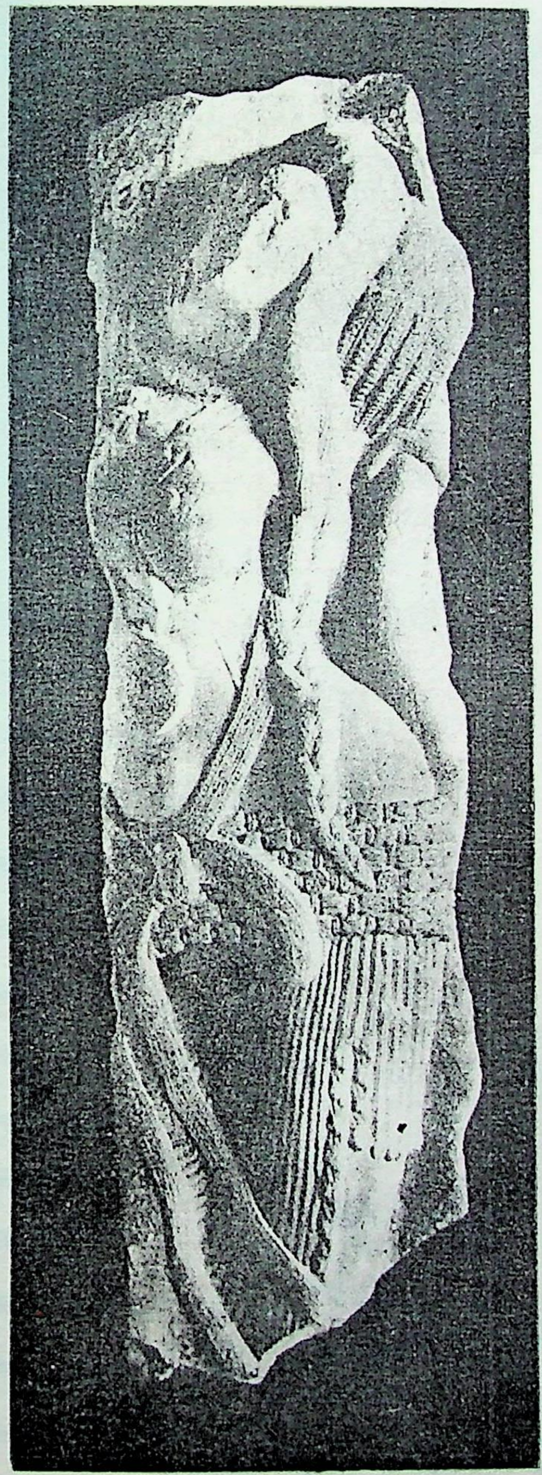
"भरहूत स्तूप की अभिरचित वेदिका"



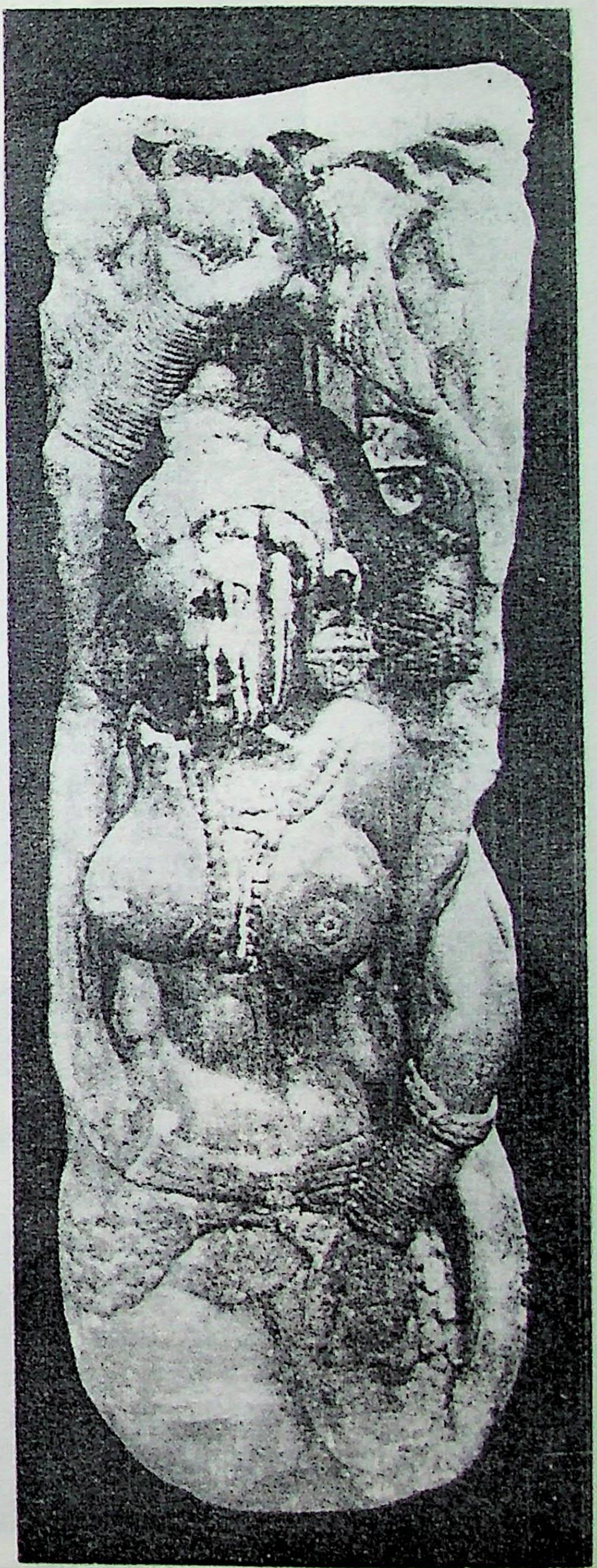


" पूर्वी तोरण [redacted] का दाहिना स्तम्भ, साँची महास्तूप "

" [redacted] दक्षिणी द्वार का दाहिने स्तम्भ का पूर्वमुखी दर्शन, साँची "



"दिल्ली के पास महरौली से प्राप्त, यक्षी मूर्ति"

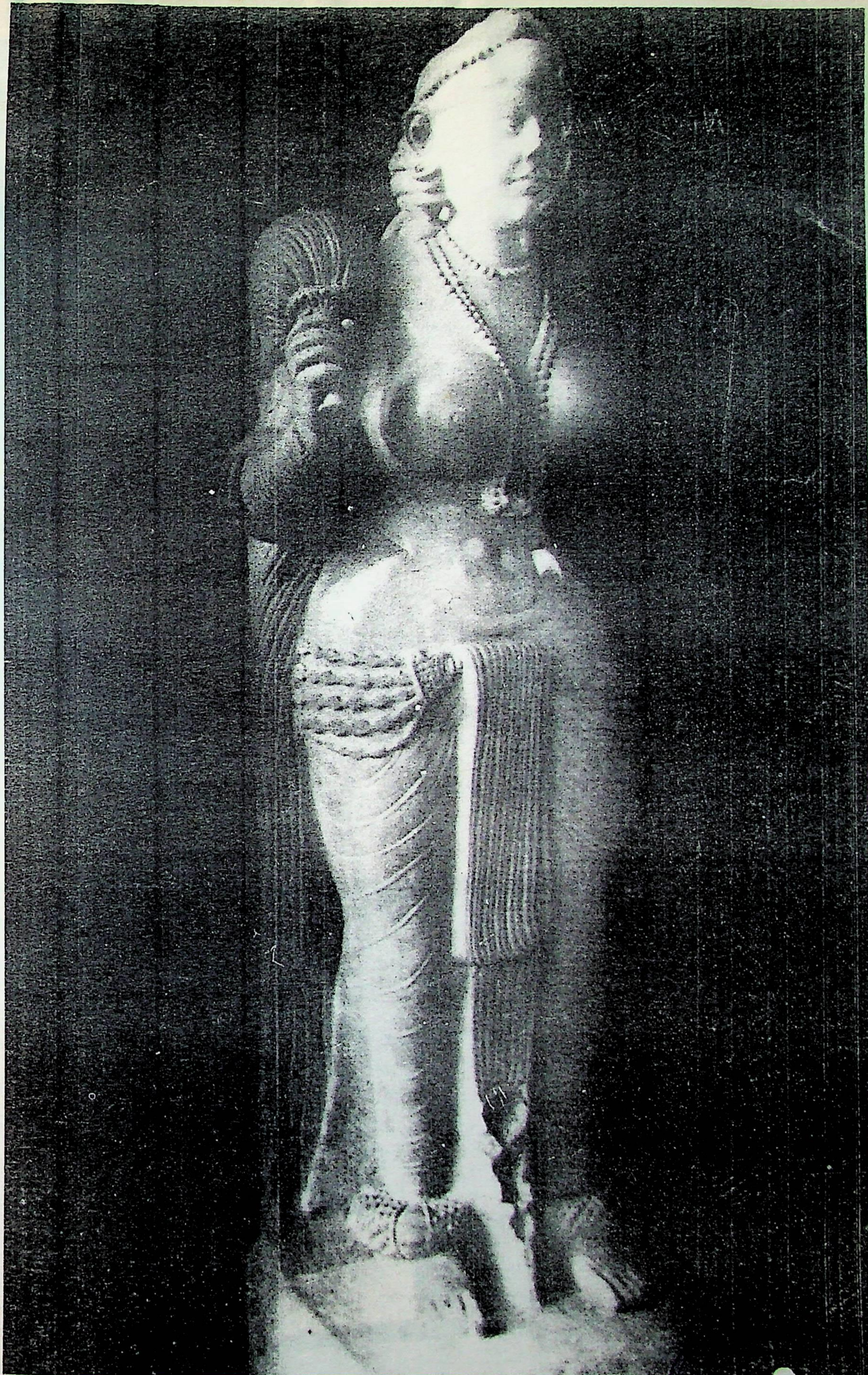


" पटना, दोमुही यक्षी-मूर्ति"



16

" खड़ी मुद्रा में यक्ष-मूर्ति, पटना संग्रहालय "



" दीदारगंज, पटना, यक्षी मूर्ति "